THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180230
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891 H26K   Accession No. G.H.3174

Author ~~शंकर कुरुप, जी~~ मेनन, के. ना.

Title कवि श्री माला : मलयालम १९६२

This book should be returned on or before the date last marked below.

कवि-श्री माला

* मलयालम *

कवि :

वल्लतोळ नारायण मेनन

सम्पादक–अनुवादक

एम. श्रीधर मेनोन

"भारत सरकार की ओर से भेंट"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :

मोहनलाल भट्ट

मन्त्री :

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,

हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण—३००१

मई, १९६२

मूल्य—रु. २/-

● ● ●

मुद्रक :

मोहनलाल भट्ट

राष्ट्रभाषा प्रेस,

हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है, उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य--इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

मलयालममें कुछ ऐसी विशिष्ट ध्वनियाँ हैं जो देवनागरीमें नहीं हैं। मलयालममें 'ए' और 'ओ' के ह्रस्व रूप भी हैं। उन रूपोंको सूचित करनेके लिए इस पुस्तकमें क्रमशः ॆ और ॊ चिह्न रखे गए हैं; यथा—ऍन्ट्, और यॊव्रु। इसी तरह निम्नांकित विशिष्ट ध्वनियाँ भी द्रष्टव्य हैं:—

ष़ – मूर्धन्य, असंघर्षी ध्वनि; यथा—व्रेषु।

ऱ – मूर्धन्य, पार्श्विक, कम्पित ध्वनि; यथा—कीऱ।

ट़ – वर्त्स्य, स्पृष्ट ध्वनि; यथा—पाम्पिन्ट़।

इनके अतिरिक्त मलयालममें 'न' के भी दन्त्य और वर्त्स्य दो रूप हैं, किन्तु उनके लिए पृथक ध्वनि चिह्न नहीं दिए गए हैं।

श्री एम. श्रीधर मेनोनजीने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, काव्यांशको सम्पादित तथा अनूदित कर सारी सामग्रीको इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। संग्रहकी आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री व्ही. एन. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीटयूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है, उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

आशा है, प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

मन्त्री,
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका

पृष्ठांक

मलयालम-साहित्य-परिचय [प्रारम्भसे लेकर सन् १९२० तक] १

कवि-परिचय २७

काव्य-सञ्चय ४५

कवि-श्री माला

मलयालम

वल्लतोळ नारायण मेनन

मलयालम साहित्य परिचय

[प्रारम्भसे १९२० तक]

मलयालम भाषा
और
उसका साहित्य

• • •

मलयालम केरलकी मुख्य भाषा है। ई० सन् १९५१ की जनगणनाके अनुसार इसके बोलनेवालोंकी संख्या १३३ लाख है। पूर्व, दक्षिण और उत्तरभागके कुछ गाँवों-कस्बोंको छोड़कर केरल भरमें इसी एक भाषाका व्यवहार चल रहा है।

मलयालम भाषाकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मतभेद है। कोई इसे तमिलकी पुत्री मानते हैं तो कोई उसकी छोटी बहन। कोई-कोई तो इसे तमिलसे भी प्राचीन कहनेका साहस करते हैं। बात तो यह है कि यह मूल द्रविड़ भाषाकी ठीक वैसी ही एक शाखा है जैसी कि तमिल, कन्नड़, तेलुगु आदि भाषाएँ। लेकिन दूसरी द्रविड़ भाषाओंकी अपेक्षा इसका अधिक निकटतम सम्बन्ध तमिलसे है। भाषा विज्ञान-वेत्ताओंकी यह राय है कि मूल द्रविड़ भाषासे पहले-पहल तेलुगु–कन्नड़ शाखा अलग हुई जिससे तेलुगु और कन्नड़ तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाली कई बोलियोंका विकास हुआ। तमिल–मलयालम शाखा और कुछ सदियोंके लिये अभिन्न होकर रही और इस कारणसे मलयालमकी, अन्य द्रविड़ भाषाओंकी अपेक्षा, तमिलसे अधिक निकटता पाई जाती है। इसके अलावा केरल तथा तमिल प्रदेशोंमें व्यापार तथा प्रवास भी चलता था। उपर्युक्त कारणोंसे आज भी तमिल तथा मलयालम भाषा-

भाषी एक दूसरेकी भाषा समझ सकते हैं और आपसमें विचारोंका आदान-प्रदान कर सकते हैं।

प्राचीन मलयालम साहित्यपर भी तमिलका प्रभाव स्पष्ट रूपसे दिखाई देता है। प्राचीन तमिल ग्रन्थोंके कई लेखक केरलके ही रहने वाले थे। उस भाषाके पाँच महाकाव्योंमें एक है–"चिलप्पतिकारम्" जिसके कवि है चेर सम्राट चँकुट्ट-वनके छोटे भाई इलंकोवडिकल। लेकिन आर्योंके यहाँ आकर बसनेके बाद–जो सर्वप्रथम परशुरामके नेतृत्वमें ई.पू.बारहवीं सदीमें घटित हुआ था–तमिल प्रभाव घटने और संस्कृतका प्रभाव बढ़ने लगा। यह प्रभाव विषयको लेकर ही नहीं, बल्कि साहित्यिक संकेतों, रूढ़ियों तथा शैलियोंको लेकर भी हुआ था। संस्कृत भाषा तथा साहित्यके कई आचार्य तथा कवि यहाँ पैदा हो गये हैं। गद्य, पद्य और चम्पू रूपवाले कई ग्रन्थ केरलके लोगोंने संस्कृतमें लिखे है। इनमेंसे कई मौलिक थे और कई संस्कृत काव्यों तथा समीक्षा ग्रन्थों, ज्योतिष, गणित, व्याकरण एवं तन्त्र-ग्रन्थोंकी व्याख्याएँ। यह परम्परा तीसरी-चौथी शताब्दीसे प्रारम्भ होकर उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी तक चली आई है।

जिस प्रदेशमें मलयालम भाषा प्रचलित है वह उतना विस्तृत नहीं है, जितना कि हिन्दी भाषी प्रान्त। अतः इसकी बोलियोंमें बहुत फर्क नहीं है। अगर कोई फर्क है भी तो वह शाब्दिक अधिक है और ध्वनिविषयक या रचना-सम्बन्धी कम। उत्तरी, मध्य देशीय तथा दक्षिणी बोलियोंमें कुछ भेद अवश्य दिखाई देते हैं; पर उतना नहीं कि पारस्परिक विचार-विनिमयमें बाधा पड़ जाय। उसी प्रकार अरब सागरके लक्ष-द्वीपकी व्यावहारिक भाषा भी मलयालम की एक बोली ही है।

हिन्दीकी तुलनामें मलयालम भाषामें कई विशेषताएँ पाई जाती है और समानताएँ भी। साहित्यिक मलयाललममें संस्कृतके बहुतसे शब्द प्रयोगमें आते हैं। व्यावहारिक मलयाललममें भी कुछ ऐसे संस्कृत शब्द उपलब्ध हैं जिन्होंने समान अर्थ वाले ठेठ शब्दोंका स्थान ले लिया है। और इस तरह अब ये शब्द अब प्रयोगमें नहीं आते। नख, मुख, सुख, दुःख, मनस्, शरीर अम्मा, भार्या, श्वास, हृदय आदि ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग अपढ़ लोग भी करते है। हिन्दीमें विशेषण-विशेष्य तथा कर्त्ता-क्रियाका लिंग-वचन-पुरुष आदिमें जो मेल माना जाता है, वह मलयाललममें नहीं है। क्रिया धातुओंके रूपोंका केवल कालके अनुसार ही मलयाललममें परिवर्तन होता है। इसके अलावा उत्तम पुरुष सर्वनामके दो रूप हैं एक अन्तर्मुक्त (inclusive) तथा दूसरा अन्तर्मुक्त (Exclusive) 'नाम्' में बोलने और सुनने वाले–दोनों आ जाते हैं और 'अङ्ङल' में केवल बोलनेवाले। मलयालम भाषाकी अपनी लिपि व्यवस्था है। अन्य द्रविड़ भाषाओंकी लिपियोंसे इसका सम्बन्ध है। दक्षिणकी सभी लिपियोंकी उत्पत्ति ब्राह्मीसे लिपि मानी जाती है। मलयालम लिपिकी यह खूबी है कि द्रविड़ तथा आर्यभाषाओंकी सभी ध्वनियोंके लिये इसमें चिह्न पाये जाते हैं।

उपर्युक्त भेदोंके होते हुये भी हिन्दी तथा मलयालममें कई समानतायें भी हैं। संज्ञाओंमें जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उनमें विभक्ति प्रत्यय ही चरम-प्रत्यय होते हैं। कर्ताका वाक्यके आदिमें, अन्य कारकोंका बीचमें और क्रियाका वाक्यके अन्तमें जो स्थान हिन्दीमें है, वही मलयालम में भी है।

अन्य भाषाके साहित्यकी तरह मलयालम साहित्यका उद्भव भी लोकगीतों, लोकोक्तियों तथा कहावतोंसे हुआ होगा, ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। ये गीत युद्ध-कलह, धर्म-सम्प्रदाय, उपासना, जाति, पेशा, सामूहिक विनोद आदिसे सम्बद्ध थे। इन गीतोंके मूल रूपका निर्धारण करना यदि असम्भव न हो, किन्तु कठिन तो अवश्य है। उपलब्ध लिखित ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन है 'रामचरित', जो बारहवीं-तेरहवीं शताब्दीका माना जाता है।

भिन्न-भिन्न समालोचकों और साहित्यके इतिहासके लेखकोंने मलयालम साहित्यको भिन्न-भिन्न कालोंमें विभक्त किया है। पी. गोविन्द पिल्लाने सन् ८२५ तकके कालको प्राचीन, ८२५ से लेकर १४२५ तकके कालको मध्य और उसके बादके कालको नवीन माना हैं। प्रो. शंकरन् नम्पियार की रायमें प्राचीन काल १३२५तक, मध्य काल १३२५ से एॅष्ुत्तच्छनके समय (सोलहवीं सदी) तक और आधुनिक काल एॅष्ुत्तच्छनके कालसे आज तक मानते हैं।आट्टूर कृष्णपिषारटीका विभाजन गोविन्द पिल्लाके विभाजनसे मिलता-जुलता है। लेकिन वे प्राचीन कालको 'आदि साहित्य काल',मध्य-कालको 'मणिप्रवाल काल' और आधुनिक कालको 'शुद्धभाषा काल' कहते हैं। उल्लूर परमेश्वर अय्यर एॅष्ुत्तच्छन तक के कालको 'प्राचीन साहित्य काल', एॅष्ुत्तच्छन से लेकर केरलवर्मा कोयित्तम्पुरान तक (उन्नीसवीं शताब्दी) 'नवीन साहित्य काल' और बादके कालको 'अद्यतन साहित्यकाल' मानते हैं। पी. के. परमेश्वरन् नायर की रायमें दसवीं-पन्द्रहवीं शताब्दीका समय प्राचीन, पन्द्रहवीं उन्नीसवीं शताब्दीका समय नवीन और उन्नीसवीं शताब्दीसे लेकर अब तक का समय अधुनिन काल है। काल विभाजनका आधार जो भी हो, यह एक तथ्य है कि मलयालम साहित्यपर पहले तमिलका और बादमें संस्कृतका गहरा प्रभाव पड़ा है। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दीमें पश्चिमी साहित्य, खासकरके अँग्रेजीका, प्रभाव ही स्पष्ट रूपसे लक्षित होता है। इस लेखमें मलयालमके इतिहासको दो खण्डोंमें विभक्त कर पहलेमें उन्नीसवी शताब्दी तकके और दूसरेमें बादके इतिहासका संक्षेपमें वर्णन किया जा रहा है।

भाषाकेके स्वरूप आधारपर प्राचीन मलयालम साहित्यको दो शाखाओंमें विभाजित कर सकते है—पाट्टु (गीत) और मणिप्रवालम्। 'लीलातिलकम्' नामक व्याकरण-ग्रन्थमे दोनोंका लक्षण दिया गया है। यह व्याकरण ग्रन्थ संस्कृतमें सूत्र-वृत्ति शैलीपर लिखा हुआ है। इसमें भाषा तथा समीक्षा शास्त्र सम्बन्धी—जैसे ध्वनियाँ, शब्द, सन्धि, अलंकार, रस, गुण, दोष आदि —कई बातें आई हैं। 'मणि-

प्रवाल का लक्षण और वर्गीकरण खास तौरसे इसमें किया गया है। यह १४ वीं–१५ वीं सदीका माना जाता है।] इस ग्रन्थके अनुसार 'पाट्टु और 'मणिप्रवालम्' के लक्षण ये हैं––

पाट्टु :– द्रमिडसंघाताक्षरनिबद्ध मॅतुकामोन,
वृत्तविशेषयुक्तं पाट्टु।
मणिप्रवालम् : भाषा संस्कृतयोगो मणिप्रवालम्।

'पाट्टु' में द्रविड़ अक्षरों-ध्वनियोंका ही प्रयोग होता है। अर्थात्, ऐसी ध्वनियोंका प्रयोग नहीं होना चाहिए जो संस्कृतमें ही हों, लेकिन मलयालममें––द्रविड़में नहीं। स्वरोंमें ऋ और ऌ तथा व्यञ्जनोंमें वर्गके द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ आदि ध्वनियाँ मूल द्रविड़में नहीं हैं। अतः अगर कोई ऐसा संस्कृत शब्द साहित्यमें प्रयोग करना पड़े जिसमें इनमेंसे कोई ध्वनि रहे तो उसे या तो छोड़ दिया जाता है या निकटतम द्रविड़ वर्णमें परिवर्तित किया जाता है। 'हरन्' 'अरन्' (शिव) होता है, 'आदि' 'आति' और 'योगि' 'योकि'। फिर, 'एॅतुका', मोना आदि अनुप्रासोंका 'पाट्टु'में प्रयोग करना आवश्यक है। पादोंके दूसरे वर्णोंका समान होना ही 'एॅतुका' है। इसे द्वितीयाक्षर प्रास भी कह सकते हैं। प्रत्येक पादोंके दोनों खण्डोंके पहले वर्णोंका मिल जाना ही 'मोना' है। 'पाट्टु' की तीसरी विशेषता यह है कि उसमें द्रविड़ छन्दोंका ही प्रयोग होता है। एक उदाहरण दिया जा रहा है :––

प्रथम पाद : **तारिणंकिन तषै क्कुषल्मलर्त्तय्यल्मुल––**
त्तावळत्तिलिळकॉळ्ळुमरविन्तनयना
दूसरा पाद : **आरणकळिलँकुं परमयोकिकळुष––**
न्टालुमॅन्ट्रुमरिवानरिय ञानपॉरुळे

[सुसज्जित केशवाली महालक्ष्मीके हृदयपर आराम करनेवाले कमलनयन परमयोगी जन जंगलोंमें कष्ट उठावें तो भी समझनेके लिए कठिन ऐसा ज्ञानका तत्व है]

इस उद्धरणमें–र–रमें एॅतुकाऔर ता-ता, तथा आ-आ में मोनाका निर्वाह किया गया है।

मणिप्रवालम्में भाषा (केरल भाषा) और संस्कृतका योग होता है। मलयालम शब्दोंके साथ विभक्ति सहित संस्कृत शब्दोंको मिलाकर काव्य-रचना करने की जो शैली है उसे मणिप्रवालम् कहते हैं। मणि अर्थात् माणिक्य और प्रवाल अर्थात् –मूँगे–का रंग लाल होता है। अतः सुन्दर तथा योग्य अनुपातमें दोनोंको मिलाया जाय, तो एकका दूसरेसे भेद नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार सविभक्तक संस्कृत शब्दों और मलयालम शब्दोंको उचित परिणाममें मिला दें, तो वे एक दूसरेसे इतने मिल जाते हैं कि रसानुभूतिमें कोई बाधा नहीं पड़ती। एक उदाहरण लीजिए :––

पूत्तूवि निन्न पुरुहूतपुराङ्गनानां
कोलत्तेनुटप्पिरवि कोलिन पाट्टु केट्टु,
कालत्ताळरम्यरुचि काळियमूर्ध्निरङ्गे
कूत्ताटुमायर्कुलदैवतमाश्रयामः

[हम अहीरोंके उस कुलदेवताकी शरणमें जाते हैं जो फूल बरसानेवाली इन्द्रांगनाओंका मधु-सहोदर गान सुनते हुए और पद-तालकी रम्य शोभा प्रकट करते हुए कालिय नागके फनोंपर नाच रहे है।]

इसमें 'पुरुहूत पुराङ्गनानां,' कालियमूर्ध्निरङ्गे," 'आश्रयामः' आदि विभक्ति सहित संस्कृत शब्द ही हैं।'

मलयालमकी काव्यधारा प्राचीन कालमें पाट्टु तथा मणिप्रवालम् में विभक्त होकर बहती थी। धीरे-धीरे सविभक्तक संस्कृत शब्दोंका प्रयोग पाट्टुमें भी होने लगा। यह प्रवृत्ति चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दीके 'निरणं कवियों' की रचनाओमें स्पष्ट रूपसे परिलक्षित है। अब पाट्टु और मणिप्रवालम्का अन्तर घटने लगा। इन दो भिन्न धाराओंका एक दूसरेसे मिलानेकी ओर यह पहला कदम था। तदुपरान्त जब संस्कृत विभक्तियाँ छोड़ दी गई और संस्कृत प्रकृतियोंके साथ मलयालम विभक्तियाँ जोड़ी जाने लगीं तब शैली-सम्बन्धी सारा भेद मिट गया और दोनों प्रवाह एक हो गये

मणिप्रवालम् शैलीकी उत्पत्तिका विचार यहाँ करना कुछ अनुचित न होगा। मुसलमानोंके आगमनपर जैसे उत्तरमें उर्दू भाषाका जन्म और विकास हुआ वैसे ही आर्य ब्राह्मणोंके केरल आनेपर मणिप्रवालम् शैलीका उद्भव भी हुआ होगा। आर्य लोगोंने पहले-पहल द्रविड़ भाषाओंके शब्दोंके साथ-साथ अपनी भाषा संस्कृतके शब्दोंको मिलाकर एक खिचड़ी भाषाका व्यवहार किया होगा जो बादमें साहित्यिक भाषा बन गई होगी।

यहाँ हम उन्नीसवीं सदीके पहलेकी मलयालम कविताकी इन दोनों धाराओंको और उसी कालके मलयालम गद्यके इतिहासको अंकित करनेका प्रयत्न कर रहे है।

पाट्टु शाखाके लोकगीतोंके सम्बन्धमें ऊपर कहा गया है। लोकगीतों और साहित्यिक पाट्टु कृतियोंमें भेद यह है कि पहलेमें जहाँ ठेठ भाषाका रूप दिखाई देता है वहाँ दूसरे पर पहले तमिल और बादमें संस्कृत का भी प्रभाव स्पष्ट लक्षित है। जनताकी व्यावहारिक भाषासे दूसरेका बहुत कम सम्बन्ध था। 'रामचरितम्', निरणं कवियोंकी रचनायें, चॅरुश्शेरीकी कृष्णगाथा, ऍषुत्तच्छन तथा कुञ्जन नम्पियारकी कृतियाँ इत्यादि साहित्यिक पाट्टुकृतियाँ हैं।

'रामचरित' मलयालम्की प्राचीनतम साहित्यिक रचना मानी जाती है। यह बारहवीं शताब्दीका एक ग्रन्थ है। रचनाकारके सम्बन्धमें मतभेद है। अधिकांश

समालोचकोंका मत है कि इसके कवि तिरुवितांकूर राजपरिवारके एक व्यक्ति थे। इनका नाम था वीरराम वर्मा। इन्होंने सन् ११९५ से १२०८ तक शासन किया था। रामायणका 'युद्धकांड' ही 'रामचरितका' विषय है। अन्य काण्डोंकी घटनाओंका उल्लेख भी प्रसंगानुसार यत्र-तत्र किया गया है। वाल्मीकि रामायण ही इस ग्रन्थका आधार है। 'पाट्टु'के सभी लक्षण इसपर घटित होते है।

निरणं कवि तीन थे। तिरुवितांकूरके एक प्रदेशका ही नाम है निरणं। माधव पणिक्कर तथा शंकर पणिक्कर भाई थे और राम पणिक्कर उनके भांजे इन कवियोंने 'पाट्टु' को भी 'मणिप्रवालम्का' जामा पहना दिया। इन कवियोंने संस्कृतके शब्दोंमें बिना कोई परिवर्तन किये तत्सम रूपमें प्रयुक्त किया। इसके अलावा सविभक्तक शब्दोंको भी ये काममें लाये। ये तीनों कवि प्रायः समकालीन थे और चौदहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध और पन्द्रहवींके पूर्वार्द्धमें जीवित थे। माधव पणिक्करने भगवद्गीताका अनुवाद प्रस्तुत किया। संस्कृतेतर भाषाओंमें यही गीताका सर्वप्रथम अनुवाद है। शंकर पणिक्करने 'भारतमाला' नामसे भारतकी कथा लिखी। रामपणिक्करकी निम्न लिखित रचनायें हैं—रामायण, भारत, भागवत, शिवरात्रि-माहात्म्य आदि।

चॅरुश्शेरी नम्पूतिरि (ब्राह्मण) थे परिवारका नाम था चेरुश्शेरी कविके नाम, जीवन काल आदिके सम्बन्धमें बड़ा मतभेद है। कोई-कोई समालोचक इन्हें एनं नंपुतिरि ही मानते है। नम्पूतिरियोंमें बहुतसे कवि और पण्डित हुए जो या तो संस्कृतमें या मणिप्रवालम्में रचनायें किया करते थे। चॅरुश्शेरीने अपनी जातिकी इस काव्य परम्पराको छोड़कर पाट्टु शैलीमें रचनाएँ कीं। इन्होंने अपनी कवितामें सरल और ललित शब्दोंका ही प्रयोग किया है और वह भी मलयालम्के प्रत्ययोंको लगाकर। इसका यह मतलब नहीं कि ये संस्कृतसे अनभिज्ञ थे। इनकी रचनाओं में कई ऐसे प्रसंग आए हैं जिनसे इनका गहरा संस्कृत ज्ञान झलक उठता है। इन्होंने सामान्य जनताके लिए काव्य रचना की। अतः जहाँ तक हो सका भाषाको व्यावहारिक बनानेका प्रयत्न किया है।

उत्तर केरलके कोलत्तिरि राजवंशमें सन् १४४६ और १४७५ के बीच उदय वर्मा नामक एक राजा राज करते थे। उनके दरबारमें चॅरुश्शेरी नामक एक कवि थे। राजाके आदेशानुसार, संस्कृतसे अनभिज्ञ आम केरलीय जनताके लिये इन्होंने 'कृष्ण गाथा' लिखी। अब भी केरलके—खास करके उत्तर केरलके—हिन्दू परिवारमें आषाढ़ और श्रावण मासोंमें इसका दैनिक पारायण किया जाता है। 'कृष्णगाथा' में भागवतके दशम स्कन्धकी भी कथा कही गई है। लेकिन यह न समझ लेना चाहिये कि चॅरुश्शेरी नंम्पूतिरि सूर या तुलसीके जैसे ही विरक्त भक्त थे और अपनी भक्तिकी मस्तीमें गाया करते थे। वे केवल एक सांसारिक व्यक्ति थे और उनकी भक्ति सांसारिकोंकी

ही भक्ति थी। सूर या तुलसी के साथ चँरश्शेरीकी तुलना करते समय इस भेदको ध्यानमें अवश्य रखना चाहिये।

मलयालमके दो भक्त कवियोंमें तुम्पत्तु रामानुजन् एँष् ुत्तच्छन् और पूंतानम् नम्पूतिरिकी गणना होती है। हिन्दीकी तरह मलयालम्में 'भक्तिकाल' नामक कोई युग नहीं है। प्राचीन मलयालम साहित्य श्रृंगार रसके विस्तारके लिये ही अधिक प्रसिद्ध है। अधिकांश कवि गृहस्थोंका जीवन ही बिताया करते थे। वे या तो राजा महाराजाओं या सामन्तोके वंशज थे या उनके आश्रित अथवा धनी नम्पूतिरि ब्राह्मण। अतः वे विलासमय जीवन व्यतीत करते थे। उन्होंने अपने काव्यका कथानक पुराणोंसे तो जरूर ले लिया है पर बीच-बीचमें किसी न किसी देवी या देवताकी स्तुति और वन्दना भी की और उसके उपादानोंका वर्णन किया। लेकिन श्रवण, मनन, पारायण, मन्दिरों तथा तीर्थाटन,–इन सबकी उनके लिये उतनीही अपेक्षा थी जितनी खाने-पीनेकी। लेकिन एप् ुत्तच्छन ऐसे कवि नहीं थे। वे किसी राजाके आश्रयमें नहीं रहे। उनका जीवन एक विरक्त योगीका था। अध्ययन और अध्यापन तथा ग्रन्थ रचनामें उन्होंने अपना सारा समय बिताया। हिन्दीके सन्त कवियोंमें सगुण-निर्गुणका जो भेद दिखाअी देता है अथवा तमिलमें शैव—–वैष्णवका, वह केरलमें और विशेषकरके एँष् ुत्तच्छनकी रचनाओंमें नहीं है। एँष् ुत्तच्छनने सभी प्रकारकी भक्ति प्रद्धतियोंका विवरण और समर्थन किया है।

एँष् ुत्तच्छनका जीवन काल सोलहवीं सदीका उत्तरार्द्ध है। इनके नामके सम्बन्धमें मतभेद है। जनश्रुतिके अनुसार एँप ुत्तच्छनका नाम था रामानुजन्। ये (अब्राह्मण) नायर जातिके थे। कहा जाता है कि वे किसी शापग्रस्त गन्धर्वके अवतार थे। ये विरक्त थे और काफी देशाटन कर चुके थे। वापस आकर उन्होंने अपने जन्म देशमे एक पाठशाला स्थापित की और अध्यापनमें लग गये। कहा जाता है कि एँष् ुत्तच्छन पहले विवाहित थे और उनको सरस्वतीके अवतार स्वरूप एक पुत्री भी पैदा हो गई थी; लेकिन इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। अपने अन्तिम कालमे वे कोचीन राज्यके चित्तूर नामक प्रदेशमें आये और वहाँ एक राममन्दिर और गुरुमठकी स्थापना की। यहीं उन्होंने चिरसमाधि भी ली।

एँष् ुत्तच्छनकी रचनाओंके सम्बन्धमे भी लोग एकमत नहीं है। अध्यात्म-रामायण, उत्तररामायण, महाभारत और देवी माहात्म्य—–ये उनकी ही कृतियाँ हैं। ब्रह्मांण्डपुराण, शतमुख–रामायण, श्रीमद्भागवत, हरिनाम कीर्तन, चिंतारत्न, कैवल्य नवनीत, रामायण–इरुपत्ति–नालुवृत्तं (चौबीस छन्दवाली रामायण), केरल नाटक ये ग्रन्थ उनके है या नहीं इसपर भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये जाते है।

अध्यात्म रामायण संस्कृतकी अध्यात्म रामायणका छायानुवाद है। भक्तिके प्रचारमे रामचरितमानसका जो स्थान उत्तरमें है वही केरलमें एँष् ुत्तच्छनकी अध्यात्म रामायणका भी है। आज भी केरलके प्रत्येक हिन्दू परिवारमें रोज इसे पढ़नेका

रिवाज चल रहा है। 'वाल्मीकि रामायण', निरणं कविकी 'रामायण' आदि पूर्व कृतियोंका प्रभाव भी इस ग्रन्थमें कहीं-कहीं साफ दिखाई देता है। रामचन्द्रके अभिषेक, रामराज्यकी स्थापना तक की कथा ही इसमें आई है। बादकी कहानी 'उत्तर-रामायण' में कही गई है जो 'वाल्मीकि रामायण' पर आधारित है। 'महाभारत' में संस्कृतके बृहत् ग्रन्थ महाभारत' की कथाका संग्रह दिया गया है। कई उपकथाएँ छोड़ दी गई है और कई एक पर्वोंका संग्रह ही दिया गया है। वर्णन विस्तारका भय ही शायद इसका कारण हो। लेकिन समझमें नहीं आता कि एॅष ुत्तच्छनने भगवद्गीता को बिना अनुवाद किये क्यों छोड़ दिया। दुर्गा देवीकी कथा ही 'देवीमाहात्म्य' का विषय है। 'चिन्तारत्न' और "कैवल्य नवनीत" में अद्वैत सिद्धान्तका प्रतिपादन है। पहलेमें गुरुके द्वारा एक शिष्याको अद्वैतका तत्व समझाया गया है और दूसरेमें गुरु और शिष्यके संवादके रूपमें इसका विवेचन है। "केरल नाटक" में केरलोत्पत्तिकी कथा है। यह कोई दृश्य काव्य नहीं है।

रामायण, भारत आदि अपनी कथाएँ एॅष ुत्तच्छन शुकके द्वारा सुनवाते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि यह एॅष ुत्तच्छन का अपना आविष्कार है जो ठीक नहीं है। तमिल में भी यह प्रथा दिखाई देती है। संस्कृत और द्रविड़के भिन्न-भिन्न छन्दोंका भी एॅष ुत्तच्छनने प्रयोग किया है।

कविकी हैसियतसे ही नहीं; बल्कि भक्ति प्रचारके रूपमें भी एॅष ुत्तच्छन प्रातःस्मरणीय है। मुसलमानोंके आक्रमणके अनन्तर भारतके अन्य प्रदेशोंमें सगुण-निर्गुण भक्तिकी जो द्विमुखी धारा बही उसका केरलमें अवतरण एॅष ुत्तच्छन रूपी भगीरथके प्रयत्नोंसे हीं हुआ। उन्होंने द्वैताद्वैत, सगुण-निर्गुण राम-कृष्ण आदि सम्प्रदाय भेदोंको नहीं माना। अपने ग्रन्थोंमें जब-जब भगवान के नाम कीर्तन और गुण कथनका प्रसंग आता था तब-तब उसका सदुपयोग किये बिना उन्होंने न छोड़ा। रामायण में जिस तल्लीनतासे उन्होंने रामका यश गाया उसी तल्लीनतासे भागवत, भारत आदि ग्रन्थोंमें कृष्णके यशका विस्तार किया। समन्वयात्मक बुद्धिमें वे तुलसी-दासके ही समकक्ष हैं। यह समन्वयात्मकता केरलीय संस्कृति की एक प्रधान विशेषता है। एक ही व्यक्तिके भालपर वैष्णवोंका चन्दन, शैवोंका भस्म और दुर्गोपासकों के कुंकुमका चिन्ह केरलमें देखा जा सकता है। एक ही मन्दिर के भीतर आप शिव और विष्णुकी प्रतिष्ठा पा सकेंगे।

एॅष ुत्तच्छनकी शिष्य परम्परामें भी कई कवि पाये जाते है जिन्होंने अपने गुरुकी ही तरह पुराणों और अन्य धार्मिक ग्रन्थोंसे कथानक लेकर काव्य रचना की।

पूंतानम् नम्पूतिरिने एॅषुत्तच्छन, की ही तरह विरक्त होकर भक्ति-भावका, जनताके हृदयोंमें, सञ्चार किया पूंतानम् मलयालम्के दूसरे भक्त कवि हैं। पूँतानम् परिवारका नाम है। कविका अपना नाम क्या है —यह ठीक तरहसे मालूम नहीं है। उनका जीवनकाल सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध और सत्रहवीं सदीके

पूर्वार्द्धके बीच माना जाता है। वे बड़े विद्वान नहीं थे। संस्कृतका उनका ज्ञान बहुत सीमित था। वे लोकानुभवके धनी थे। वे पहले गृहस्थ जीवन बिताते थे और बादमें विरक्त हुए। इसके सम्बन्धमें एक जनश्रुति है। पूंतानम्के पुत्रके अन्नप्राशनका दिन था। माता-पिता बच्चेको दासीके हाथ में देकर भोज आदिके प्रबन्धमें लग गये। दासीकी असावधानीसे पालनेमें लिटाये गये बच्चे के मुँह पर कोई कपड़ा गिर पड़ा और दम घुट जानेसे बच्चा मर गया। इसी एक घटनाके परिणाम स्वरूप पूंतानम् एकदम विरक्त हो गए और भगवान कृष्णके भक्त होकर उनके भजन-कीर्तनमें उन्होंने अपना शेष जीवन बिता दिया। वे 'ज्ञानप्पाना' ('पाना' एक छन्दका नाम है।) नामक अपने ग्रन्थमें कहते हैं—

उण्णिक्कण्णन् मनस्सिल कळिक्कुंपोळ्
उण्णिकळ् मट्टु वेणमो मक्कळाय्

[जब बालकृष्ण ही मनमें लीला करता रहता है तब सन्तानके रूपमें और लड़कोंकी क्या आवश्यकता है?]

पूंतानम् सगुण भक्तिके समर्थक थे। नाम-जप पर उनकी असीम आस्था थी। उनका विश्वास था कि उसीके द्वारा मुक्ति प्राप्त होगी। लालित्य, प्रसाद और माधुर्य ये पूंतानम्की रचनाओंके गुण है। उन्होंने स्वामी विल्वमंगलके संस्कृतमें लिखित "श्रीकृष्णकर्णामृत" की देखादेखी 'भाषाकर्णामृत" की मलयालममे रचना की जिसमें भागवतके दशम स्कन्धकी कथा कही गई है। यह संस्कृत छन्दोंमें ही लिखा गया है। इसमें वे असीम भक्तिकी और अपने मनके दोषोंको मेटनेकी प्रार्थना करते है:—

अंपाडिक्कॉरु भूषणं, रिपुसमूहत्तिन्नहो भीषणं,
पॅंपाल्वॅण्णतयिक्कुं मोषण, मतिक्रूरात्मनां पेषणं,
वनपापत्तिनु शोषणं, वनितमाक्कर्नानन्दसंपोषणं,
निन्पादं मतिदूषणं हरतु मे मंजीरसंघोषणम्

[मंजीरके घोषवाले तुम्हारे वे पाद—जो ब्रजके भूषण हैं, शत्रु समूहके लिये संहारक हैं, दूध, दही, मक्खन आदिको चुरानेमें चपल हो उठते हैं, क्रूरोंका नाश करनेमें नहीं ठिठकते; क्रूरोंका नाश करनमें द्रुतगतिको प्राप्त करते है तथा नारियोंके आनन्दको अपने चपल नर्तनसे बढ़ाते हैं—मेरे मनके दोषोंको दूर करें।]

जब सारी दुनिया कामिनी-काञ्चन तथा भू-सम्पत्तिकी आशाके पीछे पड़ी हुई है तब पूंतानम् कृष्णसे शमकी ही भिक्षा माँगते हैं।

मन्नाशयालुं मदनाशयालुं
पॉन्नाशयालुं मरुकुन्नु लोकम्;
निन्नाशकंटीलॉरुवक्कुमय्यो
कण्णा, शमं नल्कुक मानसे मे

[भूमिकी, कामकी और स्वर्णकी आशामें सारा संसार लीन हो गया है। किसीको तुम्हारी आशा नहीं है। हे कृष्ण, मेरे मनको शम दो।]

'ज्ञानप्पाना' में वे ऐहिक सुखोंकी निरर्थकता और निस्सारता तथा हरिनामोच्चारणकी महत्तापर जोर देते हैं।

'कुमारहरणम्' पाना में भागवत के एक प्रसंगका वर्णन है जिसमें एक विप्रके बच्चोंको मृत्युसे बचानेमें अर्जुन असमर्थ हो जाते हैं और फिर भगवानकी कृपासे बैकुण्ठमें जाकर उसे ले आते हैं।

रामपुरत्तु वारियरका जीवनकाल १७०३ और १७५३ के बीच है। कहा जाता है कि 'नळचरितम्' कथकळिके कर्ता उण्णायि वारियरके ये शिष्य थे। पहले संस्कृतके अध्यापन कार्यमें संलग्न थे और बादमें तिरुवितांकूर के महाराजा मार्तडवर्माके आश्रित बन गये। जनश्रुति है कि अपनी तुलना सुदामासे और महाराजाकी तुलना कृष्णसे करते हुए उन्होंने पहली मुलाकातमें एक श्लोक समर्पित किया जिस पर राजा बहुत तुष्ट हुए और वारियरको अपना आश्रित बना लिया। मार्तडवर्माके आदेशपर उन्होंने 'कुचेल' वृत्त' की रचना की और 'गीतगोविन्द' का अनुवाद किया। वारियर पर प्रसन्न होकर पुरस्कारके रूपमें राजाने उनको एक गृह और थोड़ी जमीदारी भी दान में दी। यद्यपि वे पूंतानम् और ऍषुत्तच्छन की तरह विरक्त भक्त नहीं थे, फिर भी सुदामाकी भक्तिका बड़ी तल्लीनतासे वर्णन किया है। द्वारिकामें पहुँचनेवाले सुदामाकी दशाका वर्णन देखिये :—

रामानुजांचित राजधानि सत्कारिच्चेकिय
रोमाञ्चक्कुप्पायमीरनायी चॅंचम्मे

सीमातीतानंदाश्रुविल् कुळिक्क कॉंटु कुचेल
च्चोमातिरिक्कतु चुमटायी चॅंचम्मे।
भक्तियाय काट्टु क्रैकणक्किलेट्टु पॅरुकिय

भाग्यपारावार भंग परंपरया
शक्तियोटु कूटि वन्नु मारि मारि यॅटुत्तिट्टु

शार्ङ्गियुटे पुरद्वारं पूकिक्कप्पॅट्टु

[रामानुजका कृष्णकी सुन्दर राजधानी में सत्कार–सहित दिया हुआ रोमाञ्चरूपी कुर्ता गीला हो गया। सीमा रहित आनन्दाश्रुमें स्नान करनेसे वह कुर्ता कुचेल सोमयाजीको भाररूप हो गया। भक्ति-पवनके लगनेसे बढ़नेवाले भाग्य रूपी समुद्रमे उठनेवाली तरंगें प्रबल होकर आईं और उन्होंने सुदामाको शार्ङ्गिके पुरद्वारपर पहुँचा दिया।]

मल्लाहोंके पतवारोंकी ताल पर यह गाया जा सकता है। अतः इस छत्दको 'वंचिप्पाट्टु' (नौका-गान) कहते है।

पाट्टु शाखाके कुञ्चन नम्पियार नामक एक और कविका उल्लेख आवश्यक है। इनका जीवनकाल १७००–१७७० माना जाता है। सत्रहवीं–अठारहवीं शताब्दीमें 'रामपाणिवाद' एक कवि पाये जाते हैं जिन्होंने संस्कृतमें कई उत्कृष्ट रचनाएँ की हैं। कोई-कोई समालोचक इन्हें कुञ्चननम्पियार ही मानते हैं और कहते हैं कि नम्पियार दोनों भाषाओंमें सिद्धहस्त थे। राम इनका नाम था, 'पाणिवाद' का मतलब है हाथसे करनेवाला। नम्पियार जातिकी परम्परागत वृत्ति चाक्कियार्-कूत्तुमें मिषाव नामक बाजा बजाना है। अतः कुञ्चन नम्पियारने 'पाणिवाद' शब्द को अपने नामसे जोड़कर रखा। 'कुञ्चन' शब्द शायद लाड़-प्यार करनेवाले माता-पिता या बन्धु जनों द्वारा दिया हुआ होगा।

कुञ्चन नम्पियार पहले पहल अम्पलप्पुषाके राजाके आश्रयमें थे। मार्तण्ड वर्माने जब इस राज्यको तिरुवितांकूटरमें मिला लिया तब नम्पियार तिरुवनंतपुरम्के राज दरबारमें चले गये। नम्पियारने संस्कृत मलयालम और मणिप्रवालम् में कई ग्रन्थ लिखे है। संस्कृतकी रचनाओंमें, राघवीय, विष्णुविलास, उत्तर रामचरित, आदि महाकाव्य और भागवत' चम्पू तथा सीतारामधव' नाटक ही मुख्य हैं। लेकिन अपनी मलयालम रचनाओंमें ही नम्पियारका नाम अमर रहेगा। इनमें 'शीलावती चरित" 'रुक्मिणी-स्वयंवर', 'एकादशी माहात्म्य, नलचरित, शिवपुराण, पञ्चतन्त्र और विष्णुगीता तथा "तुळ्ळल्" काव्य ही मुख्य है। मणिप्रवालम् शैलीका श्रीकृष्ण चरित, और आठ दिनमें खेले जानेवाले भारत, शंबरवध, रासक्रीड़ा, पालाषि (क्षीरसागर) मथन, बाणयुद्ध आदि कथकळि ग्रन्थ भी इनके लिखे हुए है। 'तुळ्ळल्' कथाओं की संख्या चालीस-पचास तक है।

'तुळ्ळल्' शाखाका पिता होनेका श्रेय नम्पियारको ही मिलता है। यह एक प्रकारका कथा-कथन है जिसमें एक व्यक्ति विशेष प्रकारका पहनावा पहनकर रंगमञ्च पर आता है और पौराणिक कथाओंका विशेष प्रकारके गीतोंमें आख्यान करता है। कथा-कथनके साथ साथ नृत्य और आंगिक अभिनयका भी विधान है। नटके गीतोंको दुहरानेवाले पीछे खड़े होते हैं। ताल देनेके लिये 'मद्दळ्' नामक बाजा भी बजाया जाता है। कहा जाता है कि कूत्तुकी होड़ करनेके लिये ही नम्पियारने कथा-कथन के इस नये ढंगका आविष्कार किया। मालूम नहीं कि इस जनश्रुतिमें सचाई कहाँ तक है। लेकिन आम जनताको इसमें बड़ी दिलचस्पी होती है और लोग बड़ी तत्परतासे इसे सुनते हैं।

तुळ्ळलकी कथाएँ पौराणिक हैं। लेकिन बीच-बीचमें समकालीन केरलीय जीवनके दूषित अंशोकी टीका टिप्पणी भी नम्पियारने की है। कायर योद्धा और राजा, पेटू ब्राह्मण, मद्यप नायर आदि व्यक्तियोंका उपहास नम्पियार करते हैं। उनकी रचनाओंमें आप केरलके रस्म-रिवाजोंका ही वर्णन पायेंगे। देवलोकके वर्णनमें भी आप

केरलके नगरोंका ही चित्र देख सकेंगे। हास्यके द्वारा लोगोंकी बुराइयोंको दूरकर उनमें नैतिकता को जगा देना ही नम्पियारका उद्देश्य है।

'घोषयात्रा' में चित्रसेन नामक गन्धर्व राजासे पराजित होकर भाग जानेवाले कौरव सैनिकोंकी दशा का वर्णन देखिये —

कलयुं मानुं वरुमॉरु मार्गे
वलयुं कॅट्टि कक्काट्टाळन्मार
मलयिलॉळिच्चिह पाक्कुन्नेरं
वलयिल्च्चॅन्नु वलञ्ञानॉरुवन्
वलयिल् प्पॅट्टतु कंटॉरु बेटन्
कलयॅन्नोत्तॉरु बाणमयच्चान्
तलयिल्च्चॅन्नु तरच्चतु कंटा—
मलयन् वन्निह नोक्कुन्नेरम्
कलयल्लिवनॉरु वलियॉरु तटियन्
मलयाळत्तिलॅ मानुषनॉरुवन्

[किरात लोग हिरणोंके आगमनके मार्गमें जाल फैलाकर पहाड़के ऊपर प्रतीक्षा कर रहे थे। उस समय एक सैनिक जालमें फँस कर जकड़ गया। एक किरातने हिरण समझकर तीर छोड़ा। तीर सिरपर जा लगा। किरातने आकर देखा और समझा कि यह हिरण नहीं है केरलका एक मोटा मनुष्य है]

पाट्टुशाखाके और भी कई कवि हो गये हैं। लेकिन स्थानाभावके कारण उन सबका यहाँ वर्णन नहीं किया जा रहा।

मणिप्रवालम् :

प्राचीन मलयालम साहित्यकी दूसरी शाखा है मणिप्रवालम्। मणिप्रवाल काव्योंमें 'चम्पू' और सन्देश-काव्य ही मुख्य हैं। इन काव्योंका रचनाकाल पन्द्रहवीं शताब्दी तक है। उच्च वर्गके लोगोंके श्रृंगारिक एवं विलासी पहलुओंका ही मणिप्रवाल काव्योंमें चित्रण मिलता है। "सन्देश" विप्रलम्भ काव्य होता है और चम्पू काव्योंका विषय पौराणिक है, तो भी पाट्टुकृतियोंकी तरह ये आम जनताको प्रभावित नहीं कर सके। इसका कारण शायद यह हो कि इस शाखाके अधिकांश कवि उच्च वर्गीय थे जिन्हें राजा-महाराजाओंके दरबारमें आश्रय मिला था और इसलिये जनताके जीवनसे, उसकी आशाओं–आकांक्षाओंसे वे बिलकुल अनभिज्ञ थे।

संदेश काव्योंकी भी दो शाखाएँ हैं। शुद्ध संस्कृत और मणिप्रवालम्। इनकी रूपरेखा ठीक 'मेघदूतम्'की ही है। पूर्वखण्डमें विरही नायकका सन्देशवाही मेघसे मिलन, मार्ग निर्देश आदि बातें आती है और उत्तर खण्डमें नायिकाके गृह तथा उसके विरहके वर्णनके बाद सन्देश एवं पहचान–वाक्यका कथन और सन्देश वाही मेघके

प्रत्यावर्तन की प्रार्थना आदि। संस्कृतकी सन्देश काव्य-शाखाको अगर कहीं पुष्टि मिली तो केरलमें ही, जिसका बीजारोपण कालिदासने किया था। उसका प्रस्फुटन एवं विकास तथा वृद्धि केरलमें हुई। लेकिन कहना पड़ता है कि मेघदूतके यक्षकी वह तल्लीनता और भावकी वह एकाग्रता इन सन्देशकाव्योंमें नहीं पाई जाती। मार्गमें पड़े हुए पेड़ों, पौधों, नर-नारियों, नालों, नदियों, मन्दिरों और प्रासादोंका उक्ति-वैचित्र्य पूर्ण वर्णन ही मानो इन काव्योंका लक्ष्य बन गया। नायकके विरहोद्वेग और आतुरताकी झलक इनमें अनुपलब्ध सी होने लगी। एक प्रकारकी कृत्रिमतामें ये पड़ गये और एक ही ढाँचेमें ढले हुए-से प्रतीत होने लगे। तब शीवॉल्ली नम्पूतिरिने (उन्नीसवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध) 'दात्यूहसन्देश' नामक एक हास्य-कृति लिखकर इस धाराको सफलता पूर्वक रोक दिया।

संस्कृतमें लिखे हुए प्रधान सन्देश काव्योंके अन्तर्गत, 'चातक सन्देश',' कोकिल सन्देश," भ्रमर सन्देश,' ' काम सन्देश', 'नीलकण्ठ सन्देश' आदि, और मणिप्रवालम्के हैं—'उण्णुनीलि सन्देश', 'कोकसन्देश' और उन्नीसवीं शताब्दीका 'मयूर-सन्देश' आदि।

मार्गपर बने हुए किसी मन्दिरके वर्णनके प्रसंगमें भगवान कृष्णका एक चित्र देखिए और यह भी अनुभव कीजिये कि कवि कितनी तन्मयतासे ऐसा चित्र बना लेता है :—

कालिक्कालिल् तटविन पॉटिच्चार्तुकॉंटात्तशोभं,
पीलिक्कण्णाल् कलितचिकुरं, पीतकौशेयवीतं
कोलुं, कोलक्कुषलुलियलुं बालगोपाललीलं
कोलं नीलं तव नियतवुं कोयिल् कॉळकॅङ्ङळ् चेतः

[हे कृष्ण, तुम्हारा वह नील शरीर हमारे मन-मन्दिरमें हमेशा रहे, जो गायोंके खुरोंसे उठनेवाली धूलसे शोभित है, जिसके केश मोर पंखोंसे अलंकृत हैं, जो पीत कौशेय पहने हुए हैं, और जो लाठी और बंशी-समेत बालगोपाल की लीला कर रहा है।]

सन्देश काव्योंकी उपयोगिता इसमें है कि उस समयके राजा-महाराजा तथा उनके राज्योंका, प्रधान सामन्तों, प्रति पुरुषों, एवं कर्मचारियोंका, आने जानेके मार्गों और उसमें पाये जानेवाले नद-नदियों, मन्दिरों, नगरों तथा बाजारोंका सामान्य ज्ञान उन्हें पढ़कर हमें प्राप्त होता है, चाहे यह ज्ञान पूर्ण न हो। इस दृष्टिसे देखें तो मालूम होगा कि ये सन्देश काव्य जानकारी (information) के भण्डार हैं।

चम्पूकाव्योंकी रचना कम-से-कम तेरहवीं शताब्दीमें शुरू हुई होगी। गद्य, पद्य और चम्पू रूपपर आधारित काव्यके तीन भेद हैं। कई मणिप्रवाल चम्पू गद्य-पद्यात्मक हैं। उनमें एक विशेष प्रकारकी गेयात्मकता और लय पायी जाती है।

'तुल्लल्' काव्योंके तरंगिणी (सोलह मात्रावाले) छन्दका विकास इन्हीं गद्योंसे ही हुआ है।

चम्पूके कथानक पुराणोंसे लिये हुए है। और यत्र-तत्र केरलीय जीवनका का भी दिग्दर्शन कराया गया है। ये काव्य मनोरञ्जनके लिये लिखे गये हैं और 'कुत्तु' का साहित्य प्रस्तुत करनेकी दृष्टिसे इनकी रचना की गई है। सर्व प्रथम तीन चम्पू उपलब्ध हैं—'उण्णियच्ची चरित','उण्णियाही चरित" और" उण्णिच्चिरु देवी चरित' वे पौराणिक नहीं हैं। 'उण्णि-यच्ची चरित' में उण्णियच्ची नामक नायिकाकी एक गन्धर्वके प्रति प्रेमका उदय और दोनोंका मिलन वर्णित है। "उण्णिच्चिरुतेयी चरित" में देवेन्द्रके उण्णिच्चिरुतेवी नामक युवतीमें अनुरक्त होने तथा उससे मिलनेके लिये आनेका वृत्तान्त कहा गया है। 'उण्णियाही चरित' की नायिका उण्णियाही है जो एक शाप ग्रस्त गन्धर्व युवती कही गई है। महिषमंगलम् नम्पूतिरिके दो चम्पू–'राज-रत्नावलीय' और कॉटिय विरह' (कठिन विरह) भी उपलब्ध है, जिनका विषय पुराणोंसे लिया हुआ नहीं है। पहले में १५६५–१५९५के बीच 'कॉच्ची' पर राज करनेवाले किसी रामवर्माके अपादानों तथा मन्दारमाला नामक विद्याधर सुन्दरीमें उसके अनुरक्त होनेकी कथा वर्णित है। दूसरेकी कथा कल्पित है। इसमें संगीतकेतू नामक क्षत्रिय युवक और श्रृंगारचन्द्रिका नामक युवतीके सयोग और विप्रलभ श्रृंगारका ही विवरण है। इस प्रकारके अपौराणिक चम्पू और भी पाये जायेंगे, पर अधिकांश चम्पूकार, कथानकके लिये पुराण ग्रन्थोंके ही ऋणी है। 'रामायण' 'भारत 'नैषध', 'रावणविजय' "रुक्मिणी स्वयंवर", 'कामदहन' आदि कुछ मुख्य चम्पू ग्रन्थ हैं और प्रधान चम्पूकार है पुनम् नम्पूतिरि, महिषमंगलम् नारायण नम्पूतिरि इत्यादि। कई एक चम्पुओंके कर्त्ताका निश्चित रूपसे निर्णय नहीं हो सकता।

इन मणिप्रवाल चम्पुओंमें सामान्य रूपसे दो कमियाँ दिखाई देती हैं। एक है परस्वापहरण, संस्कृतसे ही नहीं, मलयालमके अन्य कवियोंकी रचनाओंके अच्छे-अच्छे श्लोक अपने चम्पूग्रन्थोंमें ये चम्पूकार बिना किसी हिचकके रखा करते थे। दूसरा अवगुण है श्लोकोंमें पाये जानेवाले यति भंग जो पाठकोंको बहुत खटकते हैं।

सन्देश-चम्पुओंके अलावा और प्रकारके ग्रन्थ भी इस शैलीमें लिखे गये हैं। ये है 'वैशिक तंत्र', 'चन्द्रोत्सव' आदि काव्य और ज्योतिष, वैद्य तंत्रशास्त्र, आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र ग्रन्थ। 'वैशिक तंत्र' में अनंगवल्ली या अनंगसेना नामक वेशयुवती को माँ के द्वारा दिया हुआ कुलवृत्ति सम्बन्धी उपदेश है और चंद्रोत्सवमें 'मेदिनी–वेण्णिलाव' नामक वेश्या द्वारा सम्पादित चन्द्रोत्सव वर्णन है। भक्ति विषयक कई मुक्तक श्लोक भी मणिप्रलवालम् में उपलब्ध हैं। इस शैलीमें लिखा हुआ कोई उत्कृष्ट गद्य ग्रन्थ प्राप्त नहीं है।

मणिप्रवालम्के ये कवि अपने पीछे कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ सके। अधिकांश कवि उच्च कुलके थे—या तो कोई नम्पूतिरि या किसी राज-परिवारके

सदस्य तथा घोर शृंगारिकता ही इन रचनाओंमें अभिव्यक्त मुख्य भाव हैं। इन कवियोंके लिये काव्य रचना विश्राम वेलाका ही कार्य था; और साहित्यकी उपयोगिता केवल मनोरञ्जन। अतः एँषुत्त-च्छन या नम्पियारकी लोकप्रियता इनको प्राप्त नहीं हुई और ये बहुत जल्दी विस्मृत भी हो गए।

मलयालमके दृश्य-काव्य :

अब हम मलयालम् के दृश्यकाव्य पर विचार करेंगे। केरलीय दृश्यकलाका पूर्व रूप हम काली-पूजाकी भिन्न-भिन्न क्रियाओंमें देख सकते हैं। यहाँके कालीके मन्दिरोंमें दारिक नामक असुरके वधका अभिनय प्राचीन कालसे ही होता आ रहा है। आज भी दुर्गा मन्दिरोंमें कोई व्यक्ति देवीसे आविष्ट होकर देवीकासा अभिनय करता है और भक्तोंको आदेश देता है। (उस व्यक्तिको 'कौमरम्' या वॅलिच्चाप्पाटु' कहते हैं। अन्य कई देवी-देवताओंकी उपासनामें भी ये रस्में दिखाई देती हैं। इन्हें दृश्य काव्योंके बीज मान सकते हैं। आर्योंके आगमनके और यहाँ बसनेके बाद उनकी अभिनय कलाका प्रभाव केरलीय अभिनयपर भी पड़ा। बारहवीं सदीके आस-पास मन्दिरोंमें गीत गोविन्दका नृत्तयुत अभिनय—आरम्भ होने लगा' इसे अष्टपदियाट्टम्' (आठ पदवाले गीतोंका अभिनय) कहते हैं। इसके बहुत पहले 'कूत्तु' और 'कूडियाट्ट म्' नामक अभिनय व्यवस्थायें निकल पड़ी थी। तमिलके चिलप्पतिकारम् नामक प्राचीन महाकाव्यमें कूत्तुका उल्लेख है इसमें 'चाक्कियार जातिका कुछ व्यक्ति पुराण कथाओंका कथन करते हैं। मन्दिरोंके अन्दर ही 'कूत्तु' चलाया जा सकता है। अतः उच्च वर्णवाले ही प्रेक्षक हुआ करते हैं। इसमें संस्कृत तथा मणिप्रवालम्के पुराण कथा सम्बन्धी श्लोकोंको पढ़कर उसकी सरस एवं सरल व्याख्या की जाती है। श्लोकोंके चुनावमें कथाके क्रमको बनाये रखनेका प्रयत्न किया जाता है। नैमिषारण्यमें मुनियों-ब्राह्मणोंकी सभामें कथा वाचकों काही ये चाक्कियार लोग अनुकरण करते हैं। भेद केवल इतना ही है कि कथा-कथनके बीचमें सन्दर्भानुसार तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियोंकी टीका टिप्पणी भी वे किया करते हैं। नम्पियारका तुल्लुल भी अभिनय कलामें आता है।

कूडियाट्टम्मे संस्कृत नाटकोंका अभिनय है। चाक्कियार और न-ङिङ्ङयार (नम्पियार जातिकी स्त्रियाँ)मिलकर अभिनय करते हैं। अतः इसका नाम कूडियाट्टम् पड़ा, जिसका अर्थ है मिलकर अभिनय करना। आज भी मन्दिरोंमें कूडियाट्टम् किया जाता है।

फिर सत्रहवीं सदीमें 'कृष्णनाट्टम्' चल पड़ा। जिसमें भागवत् के दशम स्कन्धका सम्पूर्ण अभिनय आठ दिनोंमें किया जाता है। पहले दिनकी अवतार-कथा

आठवें दिनपर दुहरायी जाती है। कृष्णनाट्टम्का आविष्कार हुआ तत्कालीन सामूतिरि राजा द्वारा जिनका नाम था मानवेद और जिनकी राजधानी थी कोषिक्कोड़। उन्होंने इस अभिनयके लिये संस्कृतमें कृष्ण गीतिकाव्य रचा। कथकळिकी तरह इसमें गीत नहीं है--श्लोक ही हैं। गानेवाले पीछे खड़े होकर श्लोकोंको गाते हैं और तद्नुसार अभिनेता ताल-युक्त नृत्त करते है तथा भावोंकी अभिव्यञ्जना करते हैं। इसमें हस्तमुद्रायें नहीं दिखाई जाती।

किन्हीं विद्वानोंकी रायमें केरलीय दृश्यकलाकी सर्वप्रधान शाखा कथकळि का आविष्कार कृष्णनाट्टम्के पहले पन्द्रहवीं सोलहवीं सदीमें हुआ। और कोई इसे कृष्णनाट्टम्का परवर्ती मानते है। लेकिन इस बातपर सब एक मत है कि कथकळिका आविष्कार कॉट्टारक्कर राजा द्वारा हुआ जिन्होंने रामायणकी घटनाओंको लेकर इसके लिये साहित्य तैयार किया। 'पुत्रकामेष्टि', 'सीतास्वयंवर', 'विच्छिन्नाभिषेक', खटवध', 'बालिवध', 'तोरण युद्ध' (सीता मिलन बाद हनुमानके लंकापर आक्रमणकी कथा) 'सेतु बन्धन', 'युद्ध' आदि उनकी लिखी हुई कथायें हैं। बादको वेश-भूषा, कथा-रचना, अभिनय-सकेत, वाद्य-योजना आदिमें थोड़ा बहुत परिष्कार हुआ है। वर्तमान युगमें केरलमें ही नहीं, बाहर भी इस दृश्यकलाका खूब प्रचार हो रहा है।

कथकळिमें जिन कथाओंका अभिनय होता है, वे पुराणोंसे गृहीत हैं। पात्रोंका प्रवेश संस्कृत श्लोकों द्वारा और कथोपकथन मलयालम् पदों-गीतों द्वारा होता है। वाचिक अभिनयको छोड़कर शेषतीनों अभिनयोंकी (आंगिक, आहार्य और सात्विक) प्रथा है। गायक रंगमञ्चपर नटोंके पीछे खड़े होकर -गाते हैं और नट नियत हस्तमुद्राएँ दिखाते है तथा भावोंकी अभिव्यक्ति, कपोल, भौंह, ओष्ठ, नेत्र आदि के चालनों द्वारा करते है। नृत्त, नृत्य तथा नाट्य तीनोंका समावेश हम कथकळिमें देख सकते है। नाटकमें वध, भोज, युद्ध, विवाह आदि जो घटनायें रंगमञ्चपर वर्जनीय हैं, उनका भी कथकळिमें अभिनय होता है। प्रायः सभी कथाओंमें युद्ध और विवाहका कोई न कोई दृश्य रहता ही है। नायक-नायिकाके सम्भोग शृंगार सम्बन्धी एक गीत उनके आदिमें रखा जाता है। कथकळिका पूर्वनाम 'रामनाट्टम्' था क्योंकि पहले-पहल रामायणकी घटनाओंपर अभिनय हुआ करता था। कथकळि शब्दका वाच्यार्थ है कथाओंका खेला जाना।

कोट्टारक्कर राजाके बाद कथकळि साहित्य शाखामें बाढ़-सी आ गई। आश्रित कवि ही नहीं आश्रय देनेवाले राजा-महाराजा, धनी-मानी नम्पूतिरि और सामन्त सब आट्टक्कव्याओं (कथकळि साहित्य का दूसरा नाम) की रचना तथा कथकलि मण्डलियोंका संगठन करने लगे। परवर्ती आट्टक्कथाकारोंमें कोट्टयत्तु राजा, उण्णायिवारियर,इरयिम्मन् तम्पी (रविवर्मा तम्पी) आदि ही प्रधान है। कोटयत्तु राजाने महाभारतकी घटनाओंके आधारपर बकवध, कल्याणसौगंधिक, किर्म्मीरवध,

निवात कवचकालकेयवध—ये चार कथायें लिखी। वारियरने नळोपाख्यानको चार खण्डोंमें बाँट कर चार रात्रियोंके अभिनयके लिये कथाएँ तैयार की। कीचकवध, उत्तरास्वयम्वर, दक्षयाग—ये तम्पीकी रचनायें हैं। तिरुवितांकूर तथा कॉच्चीके राजवंशियोंने भी कई आट्टक्कथाओंकी रचना की। तिरुवितांकूरके महाराजा राम-वर्माने (१७२४–१७९८) कथाओंकी रचना ही नहीं की, बल्कि एक राजकीय कथकळि मण्डली भी कायम की। अठारहवीं सदी ही कथकळिकी वृद्धि की चरम सीमाका काल था। कथकळि संघोंके पालन-पोषण मान और प्रतिष्ठाका आवश्यक चिन्ह ही समझा जाने लगा। कुछ दशकोंके बाद इसका अधःपतन शुरू हुआ। इधर बीसवीं सदीमें स्व. महाकवि वल्लतोळके कर-कमलों द्वारा कथकळिका पुनरुद्धार हुआ और कला मण्डलकी स्थापना हुई।

मलयालमका गद्य-साहित्य :

विश्व साहित्यमें पद्यका ही जन्म और विकास पहले-पहल हुआ। गद्यका उद्भव और विकास बादकीही घटना है। मलयालम की भी यही हालत है। नवीं शताब्दी से लेकर यहाँ मलयालमके शिलालेख और ताम्रपत्र उपलब्ध हैं। प्राप्त गद्य-ग्रन्थोंमें दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दीकी "कौटिलीय" व्याख्या ही सबसे प्राचीन है। चाणक्यके अर्थशास्त्रकी यह व्याख्या शायद भारतीय भाषाओंमें सर्वप्रथम है। व्याख्याताका पता अब तक नहीं चला है। इसकी गद्य-शैलीपर संस्कृत और तमिल–दोनों भाषाओंका प्रभाव स्पष्ट रूपसे लक्षित है। कुछ संस्कृत नाटकोंके कूडियाट्टम्के आवश्यक निर्देश देनेवाले दो गद्य-ग्रन्थ—"आट्टप्रकारम्" और 'क्रमदीपिका' भी उपलब्ध हैं। 'दूतवाक्यम्' नामक व्यायोगका चाक्कियारकूत्तुके लिये किया हुआ चौदहवीं शताब्दीका एक गद्यानुवाद भी पाया गया है। ब्रह्माण्डपुराण, भागवत, रामायण आदि भी गद्य रूपमें मिलते हैं। संस्कृतके कुछ शास्त्र ग्रन्थोंकी—जिनका सम्बन्ध ज्योतिष, व्याकरण, तंत्रशास्त्र आदिसे है—गद्य व्याख्याएँ भी प्राप्त हैं। यहाँके गद्यकारोंने संस्कृतके 'अमरकोश' और 'वैजयन्ती' नामक कोशकी व्याख्याएँ भी गद्यमें प्रस्तुत की हैं।

गद्यके विकासकी अगली सीढ़ी तब प्रारम्भ हुअी जब पाश्चात्य देशके लोगोंका केरलमें आगमन हुआ। व्यापार, धर्म प्रचार आदिके लिये इनको मलयालमकी अपेक्षा थी। १५९९ में उदयम्पेरूर नामक जगहमें ईसाइयोंकी जो धर्म सभा हुई उसमें धार्मिक आचरणके सम्बन्धमें कई निर्णय हुये,जिनका मलयालम अनुवाद तैयार किया गया। सोलहवीं शताब्दीमें कोच्ची, कॉडुङङल्लूर तथा चेन्नमंगलम् नामक तीन जगहोंमें धर्म-शिक्षाके लिये सेमिनारोंकी स्थापना हुई। यहाँ रहनेवाले देशी और विदेशी पादरियों द्वारा धर्म-प्रचारके उपलक्ष्यमें कई ग्रन्थ लिखे गये। इनके द्वारा १५८० ई. के आस-पास दो मुद्रणालय भी स्थापित हुए। १५६३ में तीसरा मुद्रणालय कायम हुआ। इन

पादरियोंमें अर्णोस, अंजलों, फ्रांसिस, पौलिनोस, क्लॅमेंट आदि ही मुख्य थे। ये विदेशी थे। मलयालम गद्य के विकासमें सहयोग देनेवाले देशी ईसाई धर्माचार्योंमें बिशप जौसेप, पारेम्माक्किल, तोमा पादरी आदि मुख्य हैं। दूसरे ने रोमकी यात्रा पर एक ग्रन्थ लिखा, जो उन्होंने स्वयम् की थी। यह ग्रन्थ मलयालमका सर्वप्रथम यात्रा विवरण है।

धार्मिक ग्रन्थोंके अलावा इन पादरियोंने मलयालमके व्याकरणपर भी कई पुस्तकें लिखीं। किसी-किसीने कोश भी तैयार किये। अर्णोस पादरीके 'मलयालम पुर्त्तुगलकोश' और फारोस पादरीका 'मलयालम-लैटिन पुर्त्तुगलकोश' उल्लेखनीय हैं। कायंकुळम्के फिलीप्पोसरंपानने 'न्यू टेस्टामेंट' का मलयाललमें अनुवाद किया।

उन्नीसवीं शताब्दी तकके मलयालम साहित्यके विकासका ऊपर दिग्दर्शन कराया गया है। इस शताब्दीमें मलयालम अँग्रेजीके अधिक निकट सम्पर्कमें आ गई। इसके फलस्वरूप साहित्यमें नई-नई धाराओंका उद्गम हुआ। उन्नीसवीं सदीके साहित्यको हम संक्रान्ति काल का साहित्य कह सकते हैं। पश्चिमी साहित्योंके प्रभावोंका फल अगली शताब्दीमें ही पूर्णरूपसे देखा जाता है। समालोचक गण अठारहवीं शताब्दीके अन्तिम और उन्नीसवीं शताब्दीके प्रथम चरणको मलयालम साहित्यका 'काला युग' मानते हैं। कारण यह है कि इस कालमें कोई उत्कृष्ट ग्रन्थ किसी भी शाखामें प्रस्तुत नहीं हुआ। कोई युग-निर्माता कवि इस कालमें नहीं पाया जाता है। यह परिस्थिति क्यों हुई ? शायद उसका यह कारण था कि देशभरमें राजनैतिक अशान्ति फैली हुई थी। टीपू का आक्रमण, मार्तंडवर्माका राज्यविस्तार, पषशिश के राजा, तिरुवितांकूर मंत्री वेलुत्तम्पि और कोच्चीके मंत्री पालियत्तच्चनका अँग्रेजोंके खिलाफ विद्रोह, इत्यादि घटनाओंने राज्यभरमें अशान्ति पैदा की थी। इस आगमें कवियों और पण्डितोंको प्रोत्साहन देनेवाले कई राजपरिवारों और सामन्ती कुटुम्बोंका नाश हो गया। इस अशान्तिको दूर कर देशमें शान्ति कायम करनेके लिये कुछ समयकी अपेक्षा थी। केरलके शेष दो देशी राज्य-तिरुवितांकूर और कोचीनने अंग्रेजोंका अधिकार मान लिया। तबसे शान्ति कायम होने लगी। संकट कालमें साहित्यका प्रवाह रुक ही जाता है।

तिरुवितांकूर कोच्ची, कॉड्डुङल्लूर और कोषिक्कोड़के राजदरबार आरम्भ से ही विद्याके केन्द्र थे। कई कवियों और विद्वानोंको इन दरबारोंसे प्रोत्साहन मिलता था। टीपूके आक्रमणके फलस्वरूप कोषिक्कोड़के सामूतिरिके राजाका अन्त हो गया। और मलाबारके कई पण्डित और साहित्यकार तिरुवितांकूर दरबारमें चले गये। तब कोषिक्कोड़की विद्वत्संसद बन्द हो गयी। कॉड्डुङल्लूरकी रियासत यद्यपि कोच्ची में मिलाई गई थी, फिर भी उस परिवारने विद्वानोंको प्रोत्साहन देना नहीं छोड़ा उस राजवंशने स्वयं कई पण्डितों-कवियोंको जन्म दिया था। तिरुवनन्तपुरम् भी साहित्यके केन्द्रकी हैसियतसे इस समय बहुत प्रसिद्ध था।

उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें कर्णल दूसरे तिरुवितांकूर और बादमें कोचीके राजाके दीवान नियुक्त हुए। स्वाति तिरुनाळ स्वयं भी बड़े पण्डित थे। अँग्रेजी, संस्कृत, तेलुगु, फारसी, महाराष्ट्री, तमिल, कन्नड़, हिन्दी आदि कई भाषाओंको उन्होंने सीख लिया था। उन्होंने भिन्न-भिन्न भाषाओंमें कई गीतोंकी भी रचना की है। वे संस्कृत और मलयालमके कई ग्रन्थोंके लेखक थे। संगीत, साहित्य आलेखन आदि कलाओंमें निष्णात केरल और बाहरके कई विद्वानोंको उन्होंने अपने दरबारमें स्थान देकर प्रोत्साहित किया। उनके उत्तराधिकारी राजाओंने भी अपने पूर्वजके कामोंको आगे बढ़ाया। नये ढंगके विद्यालयों और मुद्रणालयोंकी स्थापनाके फलस्वरूप पाठ्यपुस्तकों और अन्य ग्रन्थोंकी रचना तथा प्रचारको बढ़ावा मिला। गद्य और पद्य की कई कृतियाँ स्कूलों—कालेजोंके लिये और बुजुर्ग पाठकोंके लिये लिखी गईं।

जार्ज मात्तन नामक पादरी, जो आधुनिक मलयालमके पिता माने जाते हैं, वे इसी शताब्दीमें ही जीवित थे। मलयालमका सर्वप्रथम भारतीय इतिहास ग्रन्थ अय्मनं पी. जोण द्वारा, एक अँग्रेजी पुस्तकके अनुवादके रूपमें प्रकाशित हुआ। इन ईसाई धर्म प्रचारकोंकी भाषा व्यावहारिक भाषासे अधिक मिलती-जुलती थी। अतः अब तकके ग्रन्थकी भाषासे भिन्न थी जिस पर पहले तमिल और बादको संस्कृत का गहरा प्रभाव था।

उन्नीसवीं शताब्दीके सबसे अधिक प्रसिद्ध ईसाई पादरी श्री हेरमन गुण्डर्ट (१८१४–१८९३) ने मलाबारमें रहकर ईसाई धर्म ग्रन्थोंके अलावा 'मुहम्मद चरित', 'नलचरितसार शोधना' आदि अन्य धर्मसम्बन्धी ग्रन्थ भी लिखे। आपने रामचरितसे लेकर कुञ्जन नम्पियार तकके गद्य-पद्योंके नमूने देकर विद्यार्थियोंके लिये एक पाठमाला संकलित की। इसके अलावा कहावतोंका संग्रह, व्याकरण और "केरलप्पषमा" (केरलकी प्राचीनता) नामक इतिहास ग्रन्थ भी लिखे। आधुनिक ढंगका एक 'मलयालम अंग्रेजीकोश' भी इन्होंने तैयार किया। जो अब तकके कोशोंमें सर्वोत्तम है। इसमें शब्दोंकी उत्पत्तिके साथ साथ प्राचीन ग्रन्थोंसे सन्दर्भ भी दिये गये है। कोवुण्णि नेडुङ्ङाडिने "केरल कौमुदी" नामक सर्व प्रथम व्याकरण और पी. गोविन्द पिल्लाने सर्वप्रथम भाषाका इतिहास और जेरार्द्र पादरीने भाषण कलाका सर्वप्रथम ग्रन्थ इसी शताब्दीमें लिखे। केरल वर्मा, राजराजवर्मा आदि साहित्यकारोंकी रचनाएँ भी इसी शताब्दीमें की है।

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम पादमें मलयालम उपन्यासोंका भी बीजारोपण हुआ था जिसका प्रारम्भिक इतिहास यहाँ दिया जा रहा है। हिन्दीकी तुलनामें मलयालम उपन्यास शाखाकी यह खूबी है कि जहाँ हिन्दीमें प्रारम्भिक कालमें सैकड़ों उपन्यास निकले जिनका जनजीवनसे कोई सम्बन्ध नहीं था और जो घटना

प्रधान ही थे, वहाँ मलयालमका दूसरा उपन्यास ही सामाजिक समस्याओंको लिये हुए लिखा गया था। अप्पु नॅडुङ्ङाडिकी 'कुन्दलता' ही मलयालमका सर्वप्रथम उपन्यास है, जो १८८७ में प्रकाशित हुआ। इसमें कुछ ऐसी घटनाओंका वर्णन है जिनपर विश्वास नहीं किया जा सकता तथा उसमें सामान्य जीवनके प्रश्नोंका न तो चित्रण था, न उसका कोई समाधान। यह उपन्यासका वाह्य रूप ही लिये हुए था। १८९४ में केरल वर्मा द्वारा 'अकबर' नामक एक डच उपन्यासके अँग्रेजी संस्करणका अनुवाद भी निकला। इसकी भाषा संस्कृत-बहुल थी, संभवतः इसी लिये इसका प्रचार भी कम हुआ। इसके पहले १८८९ में चन्तुमेननकी 'इन्दुलेखा' और १८९१ में उनकी ही 'शारदा' निकल चुकी थी। 'इन्दुलेखा' के नायक माधव और नायिका इन्दुलेखा दोनों नई पीढ़ीके प्रतिनिधि हैं। इसमें तत्कालीन नायर--नम्पूतिरि समुदायोंकी कमियों, दुर्बलताओं, एवम् बुराइयोंका चित्रण पाया जाता है और उनके विरुद्ध विद्रोह भी। 'शारदा' का प्रथम भाग ही निकल पाया था कि चन्तुमेननकी मृत्यु होगई। जितना हुआ उतनेसे ही लेखककी अद्वितीय निरीक्षण शक्ति एवम् प्रतिभाका परिचय मिलता है। इसमें कचहरियों और उनके आश्रयमें फूलने-फलने वाले वकीलोंका, मुकदमा लड़ने लड़ाने और दलबन्दीसे फायदा उठानेमें सिद्धहस्त व्यक्तियों एवम् दूसरोके कामोंकी दलालीसे अपने भाग्यको बढ़ानेवाले लोगोंका हास्यपूर्ण चित्रण मिलता है। चन्तुमेननने नवीन शिक्षा प्राप्त की थी और जजके पदपर नियुक्त थे। अँग्रेजी उपन्यासोंसे वे अच्छी तरह परिचित थे। अपने दोनों उपन्यासों-में नवीन शिक्षा-प्राप्त अनुभव-सम्पन्न व्यक्तिकी दृष्टिसे ये अपने चारों ओरके नर-नारियों और परिस्थितियोंका निरीक्षण और निरूपण करते हैं। भाषा भी उनकी व्यावहारिक है। इसके बाद सी. वी. रामन पिल्लाका नाम लिया जा सकता है। जिन्होंने मार्तण्ड वर्मा और उनके परवर्ती राजाओंके समयकी घटनाओंको लेकर ऐतिहासिक उपन्यास प्रस्तुत किये और मलयालमके "वाल्टर स्काट" होनेका श्रेय प्राप्त किया। मार्तण्ड वर्मा (१८९१), 'धर्मराजा' (१९१३), 'रामराज बहादुर' (१९१७--२०) आदि उनके मुख्य उपन्यास हैं। उन्होंने 'प्रेमामृत' नामक सामाजिक उपन्यास भी लिखा जो एक असफल कृति सिद्ध हुई। कोची राजवंशीय अप्पन तम्पुरान्ने दो उपन्यास लिखे। पहला था 'भूतरायर' जिसकी कहानी केरलके पॅरुमालकालीन इतिहाससे सम्बद्ध है। दूसरा है 'भास्कर मेनोन' जो एक जासूसी उपन्यास है। अंपाडि नारायण पॉत्तुवाळका "केरलपुत्र" रामन् नम्पीशनका 'केरलेश्वर' आदि भी प्रारम्भकालीन ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इसके बादके ऐतिहासिक उपन्यासोंमें कप्पन कृष्ण मेननका "चेरमान् पॅरुमाळ" और के. एम. पणिक्करके तो दो तीन उपन्यास भी मुख्य हैं।

केरल वर्माने कालिदासके 'शाकुन्तल' का सन् १८८२ में अनुवाद किया और इस अनुवाद शाखाकी नींव डाली। चात्तुक्कुट्टि मन्नाडियार, कॉट्टारत्तिल्

शंकुण्णि, ए. आर. राजराजवर्मा, पन्तलम् केरल वर्मा, कुमारन् आशान आदि संस्कृत नाटकोंके अनुवादकोंमें प्रधान हैं। मुख्य अनूदित नाटक हैं 'जानकीप रिणय,' 'उत्तर रामचरित' 'आश्चर्य चूडामणि', 'विक्रमोर्वशीय', 'मालतीमाधव', 'वेणीसंहार', 'प्रबोधचंद्रोदय', 'स्वप्न वासवदत्त', और 'चारुदत्त'। 'शाकुंतल' के दर्जनों अनुवाद पीछे निकले हैं। कई अनुवादकोंने पदानुपद और श्लोकानुश्लोक भाषान्तरीकरणका ही प्रयत्न किया है। राजराजवर्माने ही भाषानुवादकी समर्थ शैलीको प्रचारित किया जिसमें मलयालमकी अपनी प्रकृति अक्षत होकर बनी रहती है। शेक्सपियरके भी कई ग्रन्थोंके भी अनुवाद हुए।

संस्कृतके ढंगपर कई नाटककी भी इसी समय लिखे गये। कॉड्डङल्लूर कॉच्चुण्णित्तंपुरान् के 'कल्याणी नाटक' और 'उमा विवाह', कुञ्जुकुट्टन तंपुरानके 'चंद्रिका,' 'लक्षणासंग' और 'गंगावतरण' वरुगीस माप्पिळाका 'ऍव्राथ्कुट्टि', 'तोट्टॅक्काट्ट', 'इक्कावम्माका 'सुभद्रार्जुन', नडुवत्तु अच्छन् नम्पूतिरिका 'भगवद्दूत' आदि इसमें मुख्य हैं। कल्याणी नाटक सामाजिक नाटकोंकी रचनाका प्रथम प्रयास है। के. सी. केशवपिल्लाका लक्ष्मी कल्याण और कॉच्चीप्पन माप्पिलाका 'मरियाम्मा' भी केरलीय जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले नाटक हैं। सी. वी. रामन पिल्ला द्वारा आधुनिक ढंगके दो-तीन प्रहसन लिखे गये जो मलयालमके दृश्य-काव्य-सुधारकी एक और योजना थी।

संगीत नाटकोंका आरम्भ भी इस युगमें हुआ। इनमें स्वगत, कथोपकथन आदि भी बीच-बीचमें गानोंमें रखे जाते है। इस शैलीके कई नाटक लिखे गए, जिनमें के. सी. केशव पिल्लका 'सदारामा' ही सर्व प्रसिद्ध हुआ।

यद्यपि भिन्न-भिन्न शैलीके कई नाटक लिखे गये फिर भी स्थायी रंगमंच या नाट्य मंडलीका बहुत कम प्रयत्न किया गया। नारायण पिल्ला द्वारा संगठित 'मनोमोहन' नाटक मंडलीका ही उल्लेख पाया जाता है जिसने केरलके भिन्न-भिन्न भागोंमें घूमकर 'शाकुंतल', 'उत्तर रामचरित' आदि संस्कृत नाटकोंका अभिनय किया।

सन्देशों और आट्टक्कथाओंके समान नाटक रचनामें भी अब अति होने लगी। नाटक लिखना अब फैशन-सा हो गया। शायद 'नाटकांतम् कवित्वम्" की उक्ति ही इसका कारण हो। तब मुंशी रामकुरुपने "चक्कीचंकरम्" और शीवॉल्लि नम्पूतिरिने 'दुस्पर्शानाटक' लिखकर शक्ति और मौलिकतासेहीन नाटककारोंकी हँसी उड़ाई जिससे इस धाराकी गति धीमी हो गई।

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त तक पद्यमें भावके सम्बन्धमें कोई विशेष परिवर्तन हम नहीं देखते। नई धाराओंका विकास भी कम हुआ। विषय पौराणिक रहे और शृंगार रस का ही प्रधान रहा; तो भी काव्य भाषामें कुछ परिष्कार अवश्य हुआ। यद्यपि संस्कृतके पण्डित कवियोंकी कमी नहीं थी, फिर भी भाषापर संस्कृतका

प्रभाव कम होने लगा। यों तो आधुनिक रूपमें यह प्रवृत्ति चॅरुश्शरि, नम्पियार ऍषुत्तच्छन आदि कवियोंकी रचनाओंमें भी देखी जाती है। लेकिन इसका सर्वग्राही रूप उन्नीसवीं शताब्दीमें ही देखा जाता है। केरल वर्माके 'मयूर सन्देश' तथा शाकुन्तलका अनुवाद और उसी प्राचीन परम्पराके इने-गिने अन्य व्यक्तियोंकी कुछ रचनाओंको छोड़कर मणिप्रवालम्में कोई अच्छी रचना नहीं निकली। कारण शायद यह था कि नई शिक्षा में संस्कृतका उतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं था जितना प्राचीन शिक्षा-प्रणालीमें। अब संस्कृतका ज्ञान विद्वत्ताका अनिवार्य अंग नहीं रहा। कॉडुङ्ङल्लूर, कॉची आदि राज-परिवारोंकी सीमामें ही अब संस्कृतके अध्ययन-अध्यापनका कार्य चलने लगा। "ज्ञानके लिये ज्ञान" वाला सिद्धान्त बदलकर 'नौकरीके लिये ज्ञान' वाला सिद्धान्त शिक्षाका लक्ष्य हो गया। जीवनमें संस्कृतके इस निरादरने ही काव्य मालाके रूपको बदल दिया होगा। यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि कुण्डूर नारायण मेननने ठेठ मलयालममें, बिना एक भी संस्कृतके प्रयोग किये, 'नालु भाषाकाव्यङ्गळ' (चार भाषा काव्य) और कुञ्ञुकुट्टन तम्पुरानने बावन श्लोकोंका 'नल्लभाषा' (अच्छी भाषा) नामक काव्य लिखकर एक नई धाराका उद्घाटन किया। लेकिन यह शुरूमें ही सूख गई। संस्कृतके अप्रसिद्ध और केवल कोशोंमें दिये गये शब्दों और सविभक्तक पदोंका; जो कविगण अक्सर पाण्डित्य प्रदर्शनके लिये इस्तेमाल करते थे, सर्वथा तिरस्कार हुआ। इसलिये काव्योंमें प्रसाद और माधुर्य गुण आ गये। कविता अब 'नारिकेल-पाक' की न होकर 'द्राक्षा-पाक' की हो गई। दूरान्वय, यतिभंग, विसधि आदि खटकनेवाले दोष दूर हुए और काव्य सरस होने लगा। लेकिन कहना पड़ता है कि नई प्रवृत्ति वाले इन कवियोंने परम्परागत शृंगारिकताको नहीं छोड़ा। कहीं-कहीं यह सभ्यताकी सीमा तकका उल्लंघन किया करती थी। यह प्रवृत्ति उन्नीसवी शताब्दीके दूसरे तीसरे दशकमें आविर्भूत होकर सातवें-आठवेंमे लब्ध-प्रतिष्ठ हो गई। इसे वॅण्मणीय प्रवृत्ति भी कहते हैं, क्योंकि वॅण्मणि' नामक नम्पूरि परिवारके दो कवियों (वे पिता--पुत्र थे) द्वारा ही इसका पूर्ण विकास हुआ था।

संस्कृतके परवर्ती महाकाव्योंके ढंगपर उन्नीसवी बीसवी शताब्दीमें कई महाकाव्य भी रचे गये। अषक्तु पद्मनाभ कुरुपका "रामचन्द्रविलास" पन्तळम-केरल वर्माका रुग्माङ्गद चरित, के. सी. केशव पिल्लाका का केशवीय (स्वयमन्तक मणिकी कथा) उल्लूर परमेश्वर अय्यरका उमाकेरळ, वल्लतोळ नारायण मेननका चित्रयोग, कॉडुङ्ङुल्लूर कॉचुण्णि तम्पुरानके पाण्डवोदय एवम् मलयां कॅल्लम् (मल यालम संवत्) कट्टक्कयत्तिल चॅरियान माप्पिळाका श्रीयेशुविजय, आदि इस शाखाके प्रसिद्ध ग्रन्थ थे। संस्कृत कवियोंकी कल्पनाओं, संकेतों और अप्रस्तुत विधानों आदिका अनुकरण इनमें खूब देखा जाता है। यह भ्रमात्मक धारणा प्रचलित थी कि बिना काव्य लिखे कोई भी कवि महाकवि पदका अधिकारी नही है। इस

धारणाको पहले पहल दूर किया कुमारन् आशान्ने। कुमारन आशान् की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं–'वीणपूव', 'सिह प्रसव', 'नळिनी' 'लीला', ग्रामवृक्षत्तिले कुयिल 'प्ररोदन', 'चिताविष्ट पाय सीता,' 'दुरवस्था' 'चंडाल भिक्षुकी', 'करुणा'। इसी युगमें कुञ्ञ्नुकुट्टन तम्पुरानने महाभारतका और वल्लत्तोळन वाल्मीकि रामायणका अनुवाद भी प्रस्तुत किया। के. वी. सैमनके "वेदविहार" नामक महाकाव्यमें केवल द्राविड छन्दोंका ही प्रयोग किया गया है। यह भी एक नया प्रयोग है।

कवियोंको भिन्न-भिन्न पुष्पोंका नाम देकर कात्तुळ्ळि अच्युतमेननने 'कवि-पुष्पमाला', महाभारतके भिन्न-भिन्न पात्रोंका नाम देकर कुञ्ञ्नु कुट्टन तम्पुरान्ने 'कवि भारत' भिन्न भिन्न जानवरोंका नाम देकर ऑडिडविल कुञ्ञ्नु कृष्णमेननने "कवि मृगावलि" और भिन्न-भिन्न पक्षियोंका नाम देकर कोयिप्पिल्ली परमेश्वर कुरुपने "कवि पक्षीमाला" लिखी। यद्यपि यह तुलनात्मक अध्ययनकी एक श्रेष्ठ प्रणाली नहीं थी, तो भी एक नया प्रयास अवश्य था जिससे मनोविनोद प्राप्त हुआ।

इस कालके साहित्याचार्योंमें दो व्यक्तियोंपर विचार करना आवश्यक है, क्योंकि उनमेंसे एक तो बीतनेवाली पीढ़ीके और दूसरे आनेवाली पीढ़ीके प्रतिनिधि थे। मेरा मतलब केरळवर्मा वलियकोयित्तम्पुरान और उनके भांजे राजराज वर्मासे है। दोनों संस्कृत के पारंगत विद्वान थे और तिरुवितांकूर राजपरिवारके सम्बन्धी थे। केरळ वर्माने कविता, नाटक, आट्टक्कथा, उपन्यास, निबन्ध आदि प्राचीन-नवीन सभी शाखाओंको पुष्ट किया। नये पुराने भिन्न-भिन्न विषयोंपर उन्होंने ग्रन्थ लिखे और दूसरोंसे लिखवाए और अपने को साहित्य सम्राट की पदवीके योग्य साबित किया। राजराजवर्मा तिरुवनन्तपुरम्ने मलयालम भाषाका सर्वप्रथम विवरणात्मक व्याकरण ग्रन्थ, वैज्ञानिक ढंगपर, लिखा, जिनका नाम है 'केरलपाणिनीय'। इसी तरह अलंकारों और छन्दोंके पठनके लिये क्रमशः 'भाषा-भूषण,' एवम् 'वृत्त मञ्जरी' लिखी और उत्तम गद्यके लक्षण तथा उदाहरण देते हुए "साहित्य साह्य" की रचना भी की। इनके अन्य प्रयत्नोंका उल्लेख पीछे यत्र-तत्र हुआ है।

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम पादमें मलयालम साहित्य क्षेत्रमें खलबली मचानेवाला एक 'विवाद' चला जिसका चित्रण किये बिना हम संक्रान्तिकालके साहित्य को अच्छी तरह समझ नहीं सकेंगे। इसे "द्वितीयाक्षर–प्रास-वाद" कहते है। श्लोकों के चारों पादोंके दूसरे वर्णोंका एकरूप हो जाना ही द्वितीयाक्षर प्रास है। पाट्टुमें इसे एँतुका कहा करते थे। संस्कृत वृत्तोंमें इसका पहले प्रयोग नहीं हुआ था। प्राचीन संस्कृत साहित्यके ग्रन्थोंमें भी इसका निर्वाह नहीं हुआ है। केरलके कविगण पाट्टुके एँतुका का संस्कृत छन्दोंमें भी प्रयोग करने लगे।

द्वितीयाक्षर प्रास एक प्रकारका अनुप्रास ही है और इसलिये शब्दालंकार मात्र है। अतः इसकी अत्यन्तापेक्षिताका समर्थन करनेवाले लोगोंके पैर ठोस भूमिपर नहीं है। भारतीय काव्य शास्त्र परम्परामें अलंकारको, और विशेषकरके शब्दालंकारको,

गौण स्थान ही दिया गया है। वे काव्य शोभाकर नहीं, काव्यशोभातिशायी मात्र हैं। भाव और रस ही काव्यकी आत्माके रूपमें माना गया है। फिर भी इस विवादका साहित्यके रूपान्तर और विकासमें बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। एषुत्तच्छन, पून्तानम् जैसे कुछ कवियोंका छोड़कर बीसवीं शताब्दी तकके कवियों और साहित्यकारोंके लिये मनोरञ्जन और विनोद ही काव्यकी उपयोगिता थे। कूत्तु, कूडियाट्टम, आट्टक्कथा, तुल्लल, चम्पू आदि कोई भी शाखा ली जाय, हमें मालूम होगा कि मनोरञ्जन ही इन कवियोंका लक्ष्य था। कई ऐसे कवि थे जो घंटे दो घंटेमें किसी विषयपर सैकड़ों श्लोकोंकी रचना कर सकते थे। इन्हें 'द्रुतकवि' या 'निमिष कवि' कहते थे। एक और प्रवृत्तिकी झलक इन कवियोंकी रचनाओंमें देखी जाती है जिसका बीज भी संक्रान्ति -काल में ही बोया गया था। वह है आत्मनिष्ठता (Subjective)। वस्तुनिष्ठ (Objective) कविताके साथ साथ आत्मनिष्ठ कविता भी लिखी जाने लगी। आशान् का ''वीण पूव'' (झरा फूल) आत्मनिष्ठ काव्यका एक उत्तम उदाहरण है। राजराज वर्माका 'मंगलविलास' (जिसमें मद्राससे तिरुवनन्तपुरम् तक रेलगाड़ीकी यात्रा करने वाले एक भावुक व्यक्तिके हृदयमें सह्याद्रि देखकर जो भाव जागरित हो जाते हैं उनका वर्णन है) के. सी. केशवपिल्ला का "आसन्नमरण-चिन्ताशतक" (जिसमें मृत्यु शय्यापर पड़ा हुआ एक मनुष्य लोक और अन्य प्रिय व्यक्तियों एवं वस्तुओंसे बिदा लेता है) एम. राजराजवर्मा का 'प्रियविलाप' (जिसमें अश्वति तिरुनाळ युवराजाकी मृत्युपर उनके मित्र कविका विलाप है), सुब्रह्मण्यम् पोट्टीका 'विलाप' (पुत्रकी मृत्युपर पिताका विलाप) और वी. सी. बालकृष्ण पणिक्कर का "ऑरु विलाप" (पत्नीकी मृत्युपर पतिका विलाप) और उन्हीं कविका 'विश्वरूप' (जिसमें प्रकृतिके भिन्न-भिन्न दृश्योंको देखकर कवि मुग्ध हो जाते हैं और उन दृश्यों का शब्द-चित्र प्रस्तुत करते हैं) आदि आत्मनिष्ठ काव्योंके सुन्दर उदाहरण हैं। ए. आर. राजराजवर्माकी मृत्युपर स्वयं आशान् ने भी 'प्ररोदेन' नामक एक विलाप काव्य लिखा है। जैसे काव्योंकी भाषा शैलीमें परिवर्तन का उद्घाटन हो चुका था, वैसे अब भावोंके चुनावमें भी होने लगा। इतिहास और पुराणोंको छोड़कर कवियोंकी दृष्टि अब अपने आस-पासकी वस्तुओं, व्यक्तियों और प्राकृतिक दृश्योंपर टिकने लगी। वर्तमान काव्य क्षेत्रको त्रिमूर्तियों आशान, वल्लत्तोळ और उळ्ळूर की रचनाओंमें इन भावों तथा भाषाके सभी परिवर्तनोंका पूर्ण एवम् विराट् रूप हम देख सकते है।

[नोट सन् १९२० से आजतकके मलयालम साहित्यका संक्षिप्त परिचय 'कवि-श्रीमाला: श्री शंकर कुरुप' में दिया गया है।]

● ● ●

वल्लतोळ नारायण मेनन

[कवि-परिचय]

वल्लतोळ नारायण मेनन

• • •

मद्रास प्रान्तमें मलाबार जिलेके दक्षिणी हिस्सेमें वॅट्टत्तुनाटु' एक छोटा-सा देशी राज्य था। वल्लत्तोळ नामक नायर परिवारके कोंतिमेनन इस राज्यके अन्तिम राजाके मंत्री रह चुके थे। नारायण मेननका जन्म इस परिवारमें सन् १८७९ ई. में हुआ था। आपकी माता थीं पार्वती अम्मा और पिताका नाम दामोदरन एळयतु था। ('एळयतु' उन ब्राह्मणोंको कहते हैं जो नायर लोगोंके पुरोहित होते हैं। इनका स्थान नम्पूतिरि ब्राह्मणोंसे बहुत नीचा है)

वल्लतोळको परम्परागत शिक्षा ही मिली। आधुनिक ढंगके स्कूलों-कालेजोंमें पढ़नेका अवसर उनको प्राप्त नहीं हुआ था। आपने अपने मामा रामुण्णि मेनोनके यहाँ रहकर घर परही अध्ययन करना शुरू किया। मेनन वैद्य थे उन्होंने अपने भानजेको कई वैद्य ग्रन्थ भी सिखा दिये। नारायण मेननने पारक्कुळम् सुब्रह्मण्यम् शास्त्री तथा कैक्कुळङ्ङर, राम वारियरके यहाँ तर्क शास्त्रकी भी थोड़ी पढ़ाई की। लेकिन इसमें वे बहुत आगे नहीं बढ़े। श्री करुत्तपार दामोदरन नम्पूतिरि आपके साहित्य गुरु थे। कहा जाता है कि अपने मामाके आदेशसे वे प्रारम्भमें और लड़कोंको संस्कृत पढ़ाते और स्वयं वैद्यककी प्रैक्टिस करते रहे।

वल्लतोळकी माताकी मृत्यु १८९७ ई. में हुई और पिता एवं मामाकी १९०४ ई. में.। उन्होंने १९०२ ई. में चिट्टूषि माधवी अम्माको अपनी धर्मपत्नी बनाया।

सन् १८९८ ई. में वल्लतोळ के पिताके नेतृत्वमें एक नाटक मंडली संगठित हो गई थी। इसके संचालनका भार पुत्र के ही कन्धोंपर आ पड़ा। जो अक्सर इसमें अभिनय भी किया करते थे। तीन चार साल चलकर जब यह बन्द हो गई तब "परिष्काराभिवर्द्धिनी" नामक एक संस्था शुरु की गई जिसके संचालनमें भी वल्लतोळ आगे रहे। १९१० ई. के आस-पास वे किसी रोगके फल स्वरूप बहरे हो गये। यह आजीवन उनका साथी रहा। अपनी उस दयनीय अवस्थाका वर्णन उन्होंने 'बधिर विलाप' में लिया है।

कथकळि, मोहिनियाट्टम् (एक नृत्तविशेष) जैसे मृतप्राय प्राचीन अभिनय एवं नाट्य कलाओंके पुनरुद्धारके लिये वल्लत्तोळने १९३२ ई. में 'कलामण्डलम्' नामक संस्था कायम की। इसके स्थापन एवं संचालनमें मणक्कुळम् सामन्त परिवार मुकुन्द राजा काभी बड़ा हाथ रहा। यों कह सकते हैं कि नारायण मेनन और मुकुन्द-राजा—इन दोनों महान व्यक्तियोंके परिश्रमसे ही कथकळि को पुनरुज्जीवन तथा प्रचार प्रसार मिला। आरम्भमें यह संस्था तिरुत्ति-प्परम्प 'नामक गांवमें ही चली जो मुकुन्द राजाके परिवारका केन्द्र था। बादको यह षोरणूरके पास चॅरुतुरुत्तिमें लायी गई। वल्लत्तोळ ने भी इस गांवको अपना स्थाई निवास-स्थान बना लिया और यहीं अपने लिये एक मकान तथा एक मुद्रण-घर बनवा लिया। 'कलामण्डलम्' में कथ-कळि, मोहिनियाट्टम, भरतनाट्यम्, तुळ्ळल आदिकी शिक्षा छात्रोंको दी जाती है। साथ साथ कथकलि-संगीत तथा वाद्योंका अभ्यास भी कराया जाता है। आगे चलकर इसके संचालनका भार केरल सरकारने अपने ऊपर ले लिया, फिर भी अपनी मृत्यु तक (१९५८ ई.) वल्लतोळ ही इसके सर्वेसर्वा रहे। वे केरल और भारतमें ही नहीं, बल्कि मलाया, सिंगापूर, बर्मा, सीलोन आदि देशोंमें भी कथकलि मण्डलीको ले गये और वहाँ भी इस उत्कृष्ट कलाका प्रचार किया। कई साल तक आप "साहित्य परिषद" के अध्यक्ष भी रह चुके है। आपने रूस, चीन आदि देशोंमें भी भ्रमण किया था। स्वतंत्रता प्राप्तिके कुछ साल बाद जब मद्रास सरकारने प्रत्येक द्रविड़ भाषाके सबसे बड़े कविको चुनकर उनमेंसे राज्य कविके चुननेकी बात सोची तो यह पदवी मलयालममें वल्लतोळको ही मिली।

वल्लतोळ की मृत्यु १९५८ ई. में ही हुई। उनके मुद्रणालय तथा प्रकाशन—गृहका संचालन अब भी उनके पुत्र-पुत्रियों द्वारा हो रहा है।

अपने साहित्यिक जीवनकी प्रारम्भिक अवस्थामें वल्लत्तोळ 'केरळोदयम्' 'रामानुजन' 'आत्मपोषिणी' आदि पत्रिकाओंके सम्पादक रहे चुके हैं। कुछ समय तक वे "केरळ कल्पद्रुमम्" नामक मुद्रणालयके मैनेजर भी रहे। यही आगे चलकर 'मंगळोदयम्' नामक प्रकाशन—गृह बन गया। वल्लत्तोळकी कई प्रारम्भिक रचनाओंका प्रकाशन कटत्तनाट्टु सामन्त परिवारके उदयवर्मा द्वारा संचालित

कवनोदयम्' और कोट्टकळ्ळसे पी. वी. कृष्णवारियर द्वारा सम्पादित "कवन-कौमुदी" में हुआ था।

वल्लतोळकी रचनाएँ :

वल्लत्तोळने अपने बारह तेरह वर्षकी उमरमें कविता करनी शुरू की थी। आपकी प्रारम्भिक कुछ रचनायें संस्कृत एवं मणिप्रवालम् में पायी जाती है। आपने कई सुन्दर मुक्तक श्लोक भी लिखे हैं। आपने "आरोग्य चिन्तामणि", 'गर्भ-रक्षाक्रमम्" आदि कुछ वैद्यक ग्रन्थ भी लिखे हैं। उनके साहित्यिक ग्रन्थोंको हम दो वर्गोंमें रख सकते हैं---मौलिक तथा अनूदित। प्रत्येक शाखाके प्रधान ग्रन्थोंका परिचय इस प्रकार है।

अनूदित ग्रन्थ

१. **पोर्ष्याविवाहम्**---(१९०५ ई.) यह शेक्सपियरके "वेनिसका व्यापारी" का पांच अंकोंमें लिखा हुआ अनुवाद है। इसकी छपाई नहीं हुई है।

२. **गजतुविलासम्**---(१९०० ई.)---कालिदासके 'ऋतुसंहार' का भाषान्तर।

३. **वाल्मीकि रामायणम्**---(१९००५-०७ ई.)

४. **संस्कृतके कुछ रूपक**---व्यास, कालिदास, आदिके---जैसे, पंचरात्रम्, अभिषेक नाटकम्, स्वप्नवावदत्तम्, मध्यम व्यायोगम्, उन्मत्त-राघवम्, शाकुन्तलम्, कपटकेळि और 'कर्पूर चरितम्"। इनमें अन्तिम दोनों कालञ्जरके ११६८-१२०३ ई. के राजा परमर्द्दिदेवके मन्त्री वत्सराजकी संस्कृत रचनायें है।

५. **गद्य-पद्य-मिश्रित भाषामें अनूदित पुराण**---जैसे माकण्डेय पुराणम्, पद्म पुराणम्, वामनपुराणम् और मत्स्यपुराणम्।

६. **ऋग्वेदका अनुवाद**।

मौलिक रचनाएँ :

१. **कविता-संग्रह**-----'साहित्यमञ्जरी' (आठ भाग), विषुक्कणि, दिवास्वप्नम्, वीर-श्रृंखला, परलोकम् (मृतकोंपर किये हुए विलापकी कवितायें), स्त्री (स्त्री-सम्बन्धी रचनाओंका संकलन), एन्टॅगुरुनाथन् (गान्धीजी पर लिखी हुई कवितायें) आदि।

इनमें संकलित छोटी कविताओंके तरह तरहके विषय है। किसी किसीमें अचेतन प्रकृति की वस्तुओं, दृश्यों, ऋतुओं, कालों आदिका वर्णन हैं तो और किसीका विषय है भिन्न भिन्न वर्गों-स्तरोंके मनुष्य, तथा, मुर्गा, कबूरत, गरुड़, गोली खाया पक्षी आदि मनुष्येत्तर प्राणी। किसी किसीमें ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं

और व्यक्तियोंका वर्णन है और किसी-किसीमें समकालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक एवं राजनैतिक परिस्थितियोंका उल्लेख। गान्धीजी तथा उनके रचनात्मक कार्यक्रमों एवं स्वतंत्रता-आन्दोलनका वर्णन एवं विश्लेषण भी इन संग्रहोंकी कई कविताओंमें पाया जाता है।

२. **ग्रन्थ विहारम्**—इसमें उनके द्वारा 'आत्मपोषिणी' में की गई ग्रन्थोंकी समालोचनायें संगृहीत है।

३. **बधिर विलापम्**—(१९१० ई.) अम्बिका देवीको अपनी बधिरताका निवेदन

४. **चित्रथोगम्**—महाकाव्य (१९११–१३) परवर्ती संस्कृत महाकाव्योंकी शैलीपर लिखित अठारह सर्गों वाले इस काव्यमें कथा—सरित्सागर" की मन्दारवती–सुन्दरसेन नामक कथा कही गई है। कुछ पात्रोंके नामोंको कविने बदल दिया है। मन्दारवतीके तारावली और सुन्दरसेनको चन्द्रसेनकी संज्ञाएँ दी गई हैं।

५. **गणपति**—(१९१३ ई.) 'कवन कौमुदी' के सम्पादक श्री पी. वी. कृष्णवारियरने वल्लत्तोळसे अनुरोध किया कि एक ऐसा काव्य लिखा जाय जो अलंकारोंके बोझसे तो लदा हुआ न हों पर सुष्ठु एवं सरस हो। इसके अनुसार कविने 'गणपति' नामक खण्डकाव्य लिखा। इस खण्डकाव्यका कथानक श्री महा शिवपुराण से लिया गया है। शिव एक दिन नवविवाहित उमाके शयनागारमें गये। कमर पर लपेटे हुए अंगोछेको छोड़कर शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था। सारे शरीरमें तैलका लेप हो रहा था। लज्जित होकर शिवाने पतिको बाहर कर दिया। और अपने महलपर पहरा देनेके लिये शरीरके मैलसे एक तेजस्वी पुरुषकी सृष्टि की तथा उसके हाथमें बेंतकी एक छड़ी देकर कहा कि कोई भी बिना समय देखे अन्दर न आ जाय। दूसरे दिन उसी समय शिव हाजिर हुए और द्वारपालने माताकी आज्ञानुसार उन्हें भीतर प्रवेश नहीं करने दिया वरन् उन्हें छड़ी मारकर भगा दिया। शिवने तब उसे हटानेके लिये अपने भूतगणोंको भेज दिया। प्रतिहारकी मारके समक्ष वे भी टिक न सके। देवलोकके सभी देवताओंने इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णुसे निवेदन किया। अनुनय-विनय करनेपर ब्रह्मा ऋषियों समेत गये। द्वारपालने उसकी सफेद दाढ़ी पकडकर खींच ली। ब्रह्माने अपनेको ब्राह्मण कहकर कठिनाईसे अपना बचाव किया। ऋषि-गण भी गिरते-पड़ते, और गैरिकसे रंजित दाढ़ी लिये भाग आये। फिर विष्णु सुरसेना सहित लड़नेके लिए चले। पार्वतीने अपने पुत्रकी सहायताके लिये दो भीषण देवियोंकी सृष्टि की ये देवों द्वारा चलाये सभी आयुधोंको निगलकर सैनिकोंको ही पकड़कर खानेको आगे बढ़ीं। भूकान्त विष्णुको भूमिके संश्लेषणका सुख मिला। तब शिव स्वयं लड़ाईमें उतर पड़े और त्रिशूलसे प्रतिहार का सिर काट लिया। पार्वती क्रुद्ध हुई। उनके शरीरसे सैकड़ों–हजारों शक्तियाँ निकलने लगी। भूमि और आकाश काँप उठे, ऋषिमुनियों और विबुधोंने स्तुति कर देवीको प्रसन्न किया। देवीने कहा कि अगर मेरा पुत्र जिलाया

जाए और भूत गणोंका नायक बनाया जाय तो मैं मानूँगी, अन्यथा नहीं। शिवकी आज्ञासे सुर-मुनियोंने उत्तरकी तरफ जाकर एक दन्तवाले हाथीका सिर काट डाला और उसे द्वारपालके धड़से लगाकर उसे जिन्दा किया। शिवने उन्हें गणोंका नायक बनाकर गणेशकी अभिधा दी। इस प्रकार कैलासका पारिवारिक जीवन फिरसे शान्ति पूर्वक चलने लगा।

६. **विलास लतिका**—(१९१३ ई.) संस्कृत के अमरुकशतक के अनुकरणपर लिखित शृंगार (नायक-नायिका) सम्बन्धी कुछ मुक्तक श्लोकोंका संग्रह है।

७. **बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन्**—(बन्दी अनिरुद्ध--१९१४ ई) इसमें भागवतके उषा अनिरुद्धोपाख्यानका अंशतः कथन है। अनिरुद्ध के कैद किये जानेके बाद की कथासे काव्य शुरू होता है। बाणासुरके मन्त्री कुंभाडअनिरुद्धको कारागृहमें रखकर उषाके यहाँ पहुँच गये। राजपुत्रीने उन्हें बुलाया था। राजा और मन्त्रीकी अनीतियों, अत्याचारोंकी व्यंग्य-पूर्ण टीका-टिप्पणी करनेके बाद उषाने अमात्यसे कहा कि मुझे जेलमें जाकर प्रियतमसे एक बार मिलनेकी अनुमति दी जाय। बड़े सोच-विचार और आन्तरिक संघर्षके बाद मन्त्रीने उषाको आज्ञा दे दी। अनिरुद्धने उषासे कहा कि "तुम चली जाओ। तुम्हारा यह काम पिताके लिए अपमानजनक है।" उषाने कहा—"मैं यहाँसे नहीं जाऊँगी। पिताके क्रोधकी मैं परवाह नहीं करती। अगर आप चाहते हैं कि मैं चली जाऊँ तो आप भी मेरे साथ आ जाइये।" यह सुनकर अनिरुद्धकी धीरोदात्तता जाग पड़ी। वे कह उठे—"क्या मैं चोर हूँ कि इस तरह भाग जाऊँ? तुम्हारे नए बन्धु-बान्धव मुझे यहाँसे छुड़ा लेने आएँगे। वे मेरी कुलीनताको तुम्हारे पिताके सामने प्रकट कर तुम्हें जयलक्ष्मीके समान द्वारका ले जाएँगे। अतः तुम जाओ।" इस प्रकार सान्त्वना देकर उन्होंने प्रियतमाको कारागृहसे बिदा किया। "जिस समाजमें युवक और युवतियोंको अपने हितके अनुसार जीवन-संगीको चुन लेनेका अधिकार नहीं दिया जाता, उसमें अगर 'अनिरुद्ध' का खूब प्रचार हुआ तो जरा भी आश्चर्य नहीं।" उषा और अनिरुद्धके आदर्श प्रेमने नई पीढ़ीके युवक-युवतियोंको पुलकित कर दिया।

८. **ऑरु कत्तु**—(एक पत्र—१९१४ ई.) भागवतके एक प्रसंगकी ही यहाँ उद्भावनाकी गई है। यह रुक्मी द्वारा अपनी बहन रुक्मिणीके प्रति लिखित पश्चाताप-भरा पत्र है।

९. **शिष्यनुं मकनुम्**—(शिष्य और पुत्र—१९१८ ई.) पुराण और इतिहासमेंसे सरस एवं मानवीय प्रसंगोंको चुनकर उनपर कल्पनाके सहारेसे सुन्दर ढाँचा खड़ा कर लेनेकी जो कुशलता वल्लतोळमें है, उसका एक और प्रमाण इस खण्डकाव्यमें

मिलता है। खूबी यह है कि ऐसे काव्योंका वृत्त भले ही कल्पनाकी उपज हो, फिर भी सम्भाव्यताकी सीमाके अन्दर ही रहता है और बिलकुल स्वाभाविक होता है। इस काव्यकी कथा यों है :—

एक बार परशुराम अपने गुरु शिवसे मिलनेके लिए कैलास गए। उस समय गणेशको पहरेपर खड़ा कर शिव और पार्वती महलमें आराम कर रहे थे। परशुराम अन्दर जानेको उद्यत हुए। गणेशने उन्हें रोका और कहा कि अब किसी को भी अन्दर जाना मना है। भार्गव रामने प्रतिवाद किया "शिष्य जब चाहे तब गुरुके पास जा सकता है। उसे समय और सन्दर्भ देखनेकी आवश्यकता नहीं है।" वाग्युद्ध बढ़कर शस्त्र युद्धमें परवर्त्तित हो गया। गणेशने अपनी सूँड़से ब्राह्मणको ऊपर उठाकर थोड़ा घुमा लिया और फिर जमीनपर खड़ा किया। परशुरामने रुष्ट होकर अपने हथियारसे उसके एक दाँतको काट गिराया। इसी प्रसंगकी कविकी यह उक्ति अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है—"प्राचीन भारतीयोंका रुख देवों द्वारा किये हुए उपद्रवोंको भी सहने वाला नहीं था।"

यह शोर गुल सुनकर शिव और शिवा बाहर आए। देवीने क्रुद्ध होकर पतिपर व्यंग्यके कई कटु बाण चलाए। शिव दुविधामें पड़ गए। एक ओर वीरों-से व्यवहार करनेवाला शिष्य था तो दूसरी ओर क्षत-विक्षत प्रिय पुत्र! इस झगड़ेमें वे क्या न्याय करें? इस समय कृष्ण और राधा परशुराम द्वारा याद किए जानेके कारण वहाँ आ गए और उन्होंने पार्वतीके क्रोधको शान्त किया।

१०. **मग्दलन मरियम्** (१९२१ ई.)—ईसाइयोंकी 'न्यू टेस्टामेंट' के एक कथानकका ही इसमें वर्णन है। यह 'लुकोस' के आख्यान में आता है। 'गलेला' जिलेके 'नेइन' शहरके किसी धनी यहूदीने ईसामसीहको अपने यहाँ रातके भोजनके लिए निमन्त्रित किया। उसी शहरकी एक वेश्या मग्दलनकी मरियम् मन बदलकर अपने जीवनके पंकको धोने भोजन-गृहमें आ गई और पछताते हुए ईसाके चरणोंमें गिरकर पाप-मोचनकी प्रार्थना की। ईसामसीहने कहा—"लड़की, तू चली जा; दुखी मत हो। तेरे मनके विश्वासने तेरा त्राण किया है। जब कभी कुछ पाप किया जाता है, तब यह पश्चात्ताप ही उसका प्रायश्चित्त है।"

१२. **अच्छनुं मकळुम्**—कालिदासकी शाकुन्तलकी कथाके साथ उसकी एक छूटी हुई कड़ीको कविने अपनी इस रचना द्वारा जोड़ दिया है। 'महाभारत' में विश्वामित्र और मेनका चित्रण शकुन्तलाके जन्मके परिणाम-स्वरूप हुआ है। यद्यपि मेनका रंगमञ्चपर नहीं आती, तो भी कालिदासने अपने नाटकमें परोक्ष रूपमें उसके मातृ हृदयका बड़ी बारीकीसे चित्रण किया है। पतिसे परित्यक्ता शकुन्तलाको उसीने कश्यपके आश्रममें पहुँचा दिया। लेकिन विश्वामित्र यहाँ और अन्यत्र भी छूट गए हैं। वल्लतोळको यह अच्छा न लगा, ठीक उसी तरह जैसे जयशंकरप्रसाद और द्विजेन्द्रलालरायको मुद्राराक्षस के चाणक्यका शुष्क चित्रण अच्छा न लगा था। इसलिए कविने विश्वा-

मित्रके पितृ हृदय के आलेखनके लिए पिता और पुत्रीका उसी कश्यप–आश्रममें मिलन कराया इतिवृत्त यही है। विश्वामित्र अपने शिष्य शुनःशेपके साथ कश्यपके आश्रममें पहुँचे। शिष्यको दर्शनका समय पूछ आनेके लिए भेजकर जब मुनि अशोक वृक्षकी छायामें प्रतीक्षा करते रहे, तब शकुन्तलाका पुत्र सर्वदमन वहाँ आया। उस बालकको देखकर विश्वामित्रके हृदयमें एक अज्ञात वात्सल्य भर गया और उन्होंने उसे गोदमें लेकर चूम लिया। पीछे-पीछे शकुन्तला भी वहाँ पहुँच गई। आगेकी बातें बालकोंके सुनने-देखने योग्य नहीं थी। हो सकता है कि शकुन्तलाके परित्यागकी कथा सुनकर सर्वदमन पितासे घृणा करने लगे—जैसे 'सीता' नाटकका लव। इसलिए कविने उसे मिट्टीके मोरके पीछे दौड़ाकर वहाँसे कुशलतासे हटा दिया। शकुन्तलाको देखकर मुनिके मनमें पहले मेनकाका भ्रम हुआ। फिर पूछा कि सम्राटके स्फुट लक्षणवाले इस लड़केकी माता तू कौन है? शकुन्तलाने सारी कहानी कह दी। उसे अपनी पुत्री जानकर विश्वामित्रका वात्सल्य-पूर्ण हृदय भर गया और उसे उठाकर उन्होंने उसका सिर चूम लिया। फिर उन्होंने जामाताके कुशल समाचार भी पूछे। शकुन्तलाने गद्‌गद् कण्ठसे अपने परित्यागकी कहानी भी सुनाई। अब विश्वामित्र कुपित हो गए। उनकी आँखें लाल हो गई और मुट्ठियाँ बँध गई। वे दुष्यन्तको शाप देनेवाले ही थे कि शकुन्तलाने उनके मुट्ठी-बँधे हाथोंको रोककर कहा—"परित्यागके दुःखको आजीवन सह लूँगी, लेकिन मेरा पुत्र पदच्युत न हो जाए और मैं वैधव्यमें न जल जाऊँ। माता-पिताने जिसको पैदा होते ही छोड़ दिया था उसे पतिने भी त्याग दिया—बस इतना ही।" पुत्रीकी वाणी सुनकर विश्वामित्रका क्रोध शान्त हो गया और पति-मिलनका आशीर्वाद देकर वे वहाँसे चले गए।

१३. **कॉच्चु सीता** (छोटी सीता)—देवदासियोंके एक परिवारमें उत्पन्न चम्पकवल्ली नामक बालिकाकी शोकान्त कहानी ही इसमें कही गई है। वह मातृ-हीना थी और मातामहीकी देखरेखमें पल रही थी। वह बचपनसे ही सीताके सतीत्वसे आकृष्ट हो चुकी थी। उसके लिए सीता ही आदर्श नारी थीं। लेकिन मातामहीने परम्परागत वेश्या वृत्तिमें उसे लगा लेना चाहा और उसके योग्य उपदेश भी देती रही। एक रात उसने एक विटको चम्पकके कमरेमें भेज दिया। इसका पता उस बालिकाको पहले ही मिल गया था, इसलिए उसने घरसे भागकर कुछ दिनों बाद आत्महत्या कर ली। मरनेके पहले उसने अपनी मातामहीके लिए एक पत्र भी लिख छोड़ा था, जिसमें अपने जीवनके आदर्शका वर्णन करनेके बाद यह अभिलाषा प्रकट की गई थी कि—"अगर मेरा दूसरा जन्म हो तो मैं भारतकी ही गोदमें पैदा होऊँ।"

वल्लतोळकी और भी कई रचनाएँ हैं। लेकिन वे उतनी प्रधान नहीं है। रूस और चीनके भ्रमणके बाद उन्होंने लेनिन-स्टालिनके स्तुति-गानमें भी अपनी कलम चलाई है। लेकिन उनमें वल्लतोळका नहीं दिखाई देता।

श्री पी. के. परमेश्वरन नायरकी रायमें वल्लत्तोळकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

१. ललित, मधुर, एवं प्रसाद-गुण-युक्त भाषा
२. पुराणोंकी घटनाओंको वर्तमान कालीन दृष्टिसे देखना।
३. प्राचीन कलाओंकी ही तरह मलयालम के छन्दोंका पुनरुज्जीवन।
४. देशप्रेम और देशाभिमान
५. प्रकृतिका सुन्दर चित्रण—आलम्बनके रूपमें कम और उद्दीपनके रूपमें अधिक।

जी. शंकर कुरुपकी राय है कि "वल्लतोळकी कवितामें, प्रकृति और प्रेमके अलावा सुन्दर एवं सुमधुर पारिवारिक सम्बन्धों, सामाजिक, राजनैतिक यथा-तथ्यों और राष्ट्रीयता एवं देशाभिमानका वर्णन भी है।" उनकी कविताके बारेमें बालामणी अम्मा यों कहती हैं—"वह पद-सौकुमार्य, वह औचित्य-दीक्षा, वह ध्वनि जो सीधे जाकर हृदय को लग जाती है—इन सभीके अलावा संस्कृतके महाकवियों और रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैटरलिंक आदि विश्व-साहित्यकारोंकी कृतियोंको सुगन्धित बनाने वाला वह समझौता-हीन धर्म समर्थन भी वल्लतोळकी कविताकी विशेषता है।"

इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है कि केरलके समालोचकों और साहित्यिकारोंके बीच वल्लतोळ की काफी प्रतिष्ठा है और वे काफी ऊँचा स्थान रखते हैं।

आशान, वल्लत्तोळ और उळ्ळूर—इस त्रिमूर्तिको हम संक्रांतिकालीन कवि मान सकते है। समकालीन मनुष्य जीवनकी समस्याओंका चित्रण हम तीनोंकी रचनाओंमें न्यूनाधिक मात्रामें देख सकते हैं। इसी तरह तीनों कवि द्राविड़ छन्दोंको अधिकाधिक व्यवहारमें लाए और खण्डकाव्यों तथा गीतिकाव्योंकी शैलीका प्रचार भी किए। इन तीनोंने संस्कृत काव्य की छाया मात्र बने हुए मलयालम साहित्यको निजी रूप और भाव दिया। आशान और वल्लतोळ बहुत पहले ही 'क्लासिसिज्म' (classicism)के संकुचित दायरेसे बाहर निकल गए थे। आशान स्वच्छन्दवादी रहे और वल्लतोळ स्वच्छन्दवादी और यथार्थवादी दोनों। उळ्ळूर और थोड़े दिनों के लिए परम्परावादके अन्दर ही रहे और तब बाहर आए? आशान बहुत पहले ही चल बसे और उळ्ळूर एवं वल्लतोळ दूसरोंके लिए दीप-स्तम्भ बनकर कई वर्षों तक साहित्य क्षेत्रमें रहे। वादोंकी भाषामें कहा जाए तो स्वच्छन्दवाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद, प्रगतिवाद, परम्परावाद आदि सब कुछ हम वल्लतोळ की रचनाओंमें देख सकते हैं। यह उनके दृष्टिकोणकी व्यापकताको ही सिद्ध करता है।

ऊपर कहा गया है कि वल्लतोलमें परम्परावाद (Classicism) भी पाया जाता है। क्लासिसिस्ट कवियोंकी तरह उन्होंने एक महाकाव्य लिखा है और अपनी छोटी-बड़ी कई रचनाओंके लिए इतिहास और पुराणोंसे ही विषय ग्रहण किया

हैं। उन लोगोंकी ही तरह उन्होंने संस्कृत छन्दोंका भी खूब उपयोग किया है। जहाँ 'पिता और पुत्री', 'मग्दलन मरियम्', 'कॉच्चु सीता' आदि खण्डकाव्यों और संकलनों की कई कविताओंमें यथा 'केका', 'मंजरी', 'पाना', 'काकळि' आदि द्राविड़ी छन्दोंका व्यवहार किया है, वहाँ 'गणपति' 'बधिर विलाप', 'शिष्य और पुत्र', 'अनिरुद्ध' आदि खण्डकाव्यों और कई छोटी रचनाओंमें संस्कृत वृत्त ही प्रयुक्त हुए हैं। एक ओर हृदयको दग्ध करनेवाली यथार्थ घटनाओंका वर्णन रहता है, तो दूसरी ओर 'विलास लतिका' के सुन्दर, समाज निरपेक्ष श्रृंगार-मुक्तक भी पाये जाते हैं। सारांश यह है कि वल्लत्तोळकी रचनाएँ प्राचीन और नवीनके बीचकी समन्वयात्मक कड़ी हैं और इसी कारणसे ही मैंने वल्लतोळको संक्रान्ति कालीन कवि कहा है। समकालीन विषयोंपर लिखते-लिखते बीच-बीचमें वे हमारी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यताकी ओर भी संकेत करते रहते हैं।

कथावस्तु चाहे प्राचीन कालकी कोई घटना हो और पात्र देवी-देवता या ऐतिहासिक–पौराणिक व्यक्ति हों, सभी स्थानोंपर वल्लतोळ नई उद्भावनाओं और और प्रसंगोंको जोड़कर उन्हें वर्तमान युगके अनुकूल बना लेते हैं। इसे मैं उनकी सबसे बड़ी कुशलता मानता हूँ। 'पिता और पुत्री', में अभिव्यक्त वात्सल्य एवं पति प्रेम, 'शिष्य और पुत्र' में वर्णित पार्वतीका मातृ हृदय और शिवका धर्म-संकट, 'किळिकॉचल' में चित्रित शैशवका निष्कलंक भोलापन तथा निश्चिन्त क्रीड़ाएँ, 'कर्मभूमियुटॅ पिंचुकाल' में दुष्टतापूर्ण संसारके प्रति चेतावनीके उद्गार—ये सब वर्तमान काल पर भी लागू होते हैं। इनमें अंकित समस्याएँ मनुष्य की चिरन्तन समस्याएँ हैं। अतः पाठक उनके वर्णनसे अभिभूत होते ही हैं। किसीने कहा है कि कि कोई एक व्यक्ति एक ही धारामें कभी दो बार नहीं नहाता। तब तक या तो वह स्वयं बदल जाता है या जल। लेकिन वल्लतोळकी इन उद्भावनाओंमें प्रस्तुत किए हुए तथ्य चिरन्तन हैं–एकदेशीय नहीं।

जीवनके प्रति वल्लतोळका दृष्टिकोण हमेशा प्रसादमय और आशापूर्ण रहा है। उन्होंने मरणके बारेमें बहुत कम ही सोचा है। विषादकी निविड़ छायासे उनकी कोई भी कविता ओत-प्रोत नहीं है। वैसे, देखा जाय तो 'कॉच्चुसीता,' 'आखिरी खत' आदि इनी गिनी रचानएँ अपवाद स्वरूप भी पाई जाती है। 'कॉच्चुसीता' की चम्पकवल्लीको अपनी पवित्रता सुरक्षित रखनेके लिए और 'आखिरी खत' की भामाको अपनी निराशा एवं बदनामीसे (उसने अपने कामीसे गर्भ धारण कर लिया था और वही कामी दूसरी एक युवतीसे विवाह करनेवाला था) बचनेके लिए आत्महत्या करनी पड़ी। 'माफी' में एक बेचारे मजदूरकी मृत्युका वर्णन है। लेकिन इन मृत्युओंके लिए कवि उत्तरदायी न होकर समाज ही उत्तरदायी है। आशान की तरह वल्लतोळने मृत्युको कभी काम्य नहीं माना। 'वासवदत्ता', 'नळिनी', 'लीला' आदिके (आशानकी नायिकाएँ)

मरणमें भी एक आकर्षण है; क्योंकि मृत्यु उनको मोक्षका भागी बना लेती है। लेकिन कोई नहीं चाहेगा कि वह भामा या कॉच्चुसीताकी तरह निरुपाय और तिरस्कृत होकर मरे। वल्लतोळ 'इह' को 'पर' के लिए छोड़ देनेको तैयार नहीं हैं। मनुष्य-जन्म अनुभव और आस्वादनके लिए ही है, केवल रोने और कलपनेके लिए नहीं। यही आम तौरसे उनका दृष्टिकोण है। 'नागिला' इस दृष्टिकोणका अपवाद हो सकती है। इस कवितामें एक भवदेवका चरित है, जो अपने बड़े भाई भिक्षु भवदत्तके अनुरोधसे अपनी नववधू नागिलाको छोड़कर सन्यास ग्रहण करता है, लेकिन इन्द्रियोंके दमनमें अपनेको असमर्थ पाकर सन्यास से भागकर फिरसे गृहस्थ बननेके लिए पत्नीके पास आता है और तब नागिला उसे यह कहकर वापस कर देती है कि—"व्रतका उल्लंघन यतीके लिए आत्म हत्या है! जिसने अपनी स्त्री तथा बच्चेको और किरीटको मोक्षके लिए छोड़ दिया था, उस अपने गुरुका मनमें स्मरण करके फिर जाओ।" वल्लतोळकी अधिकांश रचनाओंमें आशावादिता ही बनी रहती है और कर्मण्य जीवनका ही विस्तार है। उनकी सहानुभूति छोटे-बड़ेके प्रति समान रूपसे उमड़ पड़ती है। 'मुर्गा' और 'गोली लगा पक्षी' तक भी वल्लतोळकी अनुकम्पाके भाजन है। जाति या सम्प्रदायगत चिन्ताने उसके मनको कलुषित नहीं किया है। 'तोणियात्रा' (नौका-यात्रा), 'शुद्धरिल् शुद्धन' ('शुद्धोंमें शुद्ध'—इसमें एक नायरकी कथा है जो अपने घरपर लगी आगको बुझानेके लिए भी अछूत जातिके लोगोंको कुएँसे पानी लेनेकी अनुमति नहीं देता है), 'जाति-प्रभाव' (इसमें 'गौरी' नामक उच्च वर्ग की एक शिक्षित युवतीके 'भैरव' नामक एक अछूतसे विवाह करने और फिर पतिके आजीवन रोगी होनेपर भीख माँगकर बड़े कष्टसे जीवन-निर्वाह करनेकी कथा है) आदि रचनाओंमें उन्होंने खुले तौरसे बिगड़ी हुई जाति-व्यवस्था की, बुलन्द आवाजमें, निन्दा की है। वे कभी राजनैतिक दासताके समर्थक नहीं रहे। अपने अनेकानेक गीतों द्वारा उन्होंने असीम स्वातन्त्र्य-वाञ्छाका परिचय दिया है। बालामणि अम्मा यों कहती हैं—"हीरोंके समान उज्ज्वल कई लघु कविताए उनसे बह निकली। इन कविताओंने जनतामें कालोचित देशाभिमान तथा धर्म-बोधको जगाया और सामाजिक एवं राजनीतिक आदि किसी भी अनीति से लड़नेकी प्रेरणा उन्हें दी। उस कालमें केरल उनके मुँहसे बोलता रहा और वे महाकवि बने।"

वल्लतोळकी कई छोटी कविताओंका आलम्बन प्रकृति है। प्रकृति के अन्तर्गत मैं मनुष्येतर चेतन-अचेतन सभी वस्तुओंको रख देता हूँ। मातृवन्दनमें तो केरल का प्राकृतिक सौन्दर्य ही कविताका केन्द्र बिन्दु है। किसी समालोचकने उनके प्रकृति वर्णनके बारेमें यों कहा है—"पल्लवित-पुष्पित तरु लताएँ, हरी घाससे आच्छादित समतल भूमिसे होकर बहने वाली दुग्ध-धवल नदियाँ, लहरोंकी दुन्दुभि बजानेवाला सागर, नक्षत्रोज्ज्वल आकाश, उषाका चमकीला मन्दहास, पक्षियों का कल कूजन और झरनोंकी कल-कल ध्वनि—क्या कहा जाए, विश्व शिल्पीकी शिल्प-

कुशलताकी विजय-ध्वजा होकर हँसनेवाले नारिकेल–वृक्षके उद्यानभूत केरलकी सारी प्रकृति-छटा हम वल्लतोळकी कवितामें देखते हैं।" 'एक गाँवके जाड़ेका मौसम', 'एक गाँवकी गरमी की ऋतु', 'प्रभात-कीर्तन', 'ग्रीष्मान्तकी एक रात्रि', आदि कालगत प्रकृति वर्णनके और 'कबूतर' 'भारत-नदी,' 'मुर्गा', 'गोली खाया पक्षी' 'आँगनकी तुलसी', 'सोमग्रहण' आदि वस्तुगत प्रकृति वर्णनके उदाहरण हैं। स्थल-गत प्रकृति वर्णनका एक ज्वलन्त नमूना उनके 'मातृवन्दन' में पाया जाता है। छायावादी कवियोंकी तरह वे प्रकृति से अपना तादात्म्य कायम नहीं करते। निरीक्षककी हैसियतसे ही वे अपने चारों ओर आँखें दौड़ाते हैं। प्रकृति वल्लतोळके लिए वह चिर-संगिनी नहीं जिसे वे अपने सुख-दुःखकी कहानी सुना सकें और जिसके सुख-दुःखकी कहानी वे स्वयं सुन लें। जी. शंकर कुरुपकी तरह उन्होंने अपने अमूर्त आशयोंकी अभिव्यक्तिके लिए प्रकृतिको प्रतीक भी नहीं बनाया है। पृष्ठभूमिको सजाने या हृद्यगत भावोंको उद्दीप्त करनेके लिए भी उन्होंने प्रकृतिका सहारा लिया है।

वल्लतोळकी कविताका दूसरा विषय है प्रेम। 'मग्दलन मरियम्' 'अनिरुद्धन' आदि खण्डकाव्य उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं। प्रेमके विस्तृत अर्थमें 'पिता और पुत्री', 'शिष्य और पुत्र' आदिका शिष्य-प्रेम, पुत्र-प्रेम भी समाविष्ट है। उनकी कई छोटी छोटी कविताए भी प्रेमकी विस्तृत सीमामें आ जाती है जिनमें देशके प्रति भक्ति, दीनोंके प्रति सहानुभूति, बड़ोंके प्रति आदर आदि प्रकट किए गए है। वल्लतोळकी नायिकाओंको हृदय और आत्माके साथ-साथ लुभावना रूप भी मिला है। वासनाको उभाड़ने वाले अंगोपांगोंके वर्णन करनेमें वल्लतोळ, आशानकी तरह हिचकते नहीं है। गुरुवायूर मन्दिरके पवित्र वातावरणमें भी अप्सरा-सदृश सुन्दरियोंके छोर-बँधी गीलीकेश राशिसे ढके हुए नितम्बोंकी एक गुप्त झाँकी लिये बिना वे रह नहीं सकते (देखिए 'भक्ति और विभक्ति')। किसीने जब वल्लतोळका ध्यान ऐसे वर्णनोंकी ओर खींचा तब उनका जवाब था— "कहा जाता है कि मेरी कविता वैषयिक (सुख-भोग सम्बन्धी) कौतुक बढ़ा देती है। मै उस बातपर अभिमान करता हूँ। मनुष्य प्रपञ्चसे विरक्त हो जाय–इसका कोई हेतु मै नहीं देखता।" आशान और वल्लतोळका यह मौलिक भेद सहजवृत्तिका परिणाम भले ही न कहा जा सके, बल्कि निश्चित रूपसे शिक्षा-दीक्षा और संगीतका ही फल कहा जा सकता है।

दीनोंके प्रति सहानुभूति भी वल्लतोळकी कृतियोंका स्वभाव है। उनका हृदय दलितों, पीड़ितों के लिए पसीज उटता है। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि कुरीतियों और अत्याचारोके वर्णनमें वे किसी भी यथार्थवादी कविसे पीछे नहीं है। उनकी 'माम्प्पु' में समष्टिवादियोंको 'जलाओ-मिटाओ' वाला नारा चाहे न हो, फिर भी कह सकते है कि मलयालम की अत्युत्तम यथार्थवादी कविताओंमें उसका अग्रिम स्थान है। इसका प्रधान कारण यह है कि उनकी सहानु-

भूति, बौद्धिक नहीं, वरन् हार्दिक है। 'कॉच्चुसीता' में देवदासी-प्रथाकी बुराईका चित्रण है। 'जाति-प्रभाव' 'शुद्धोंमें शुद्ध', 'नौकायात्रा' आदिमें अस्पृश्यताकी समस्या है तो 'खानेको नहीं पहननेको नहीं' में दारिद्रयसे पीड़ित एक प्रौढ़ कुलीन नारीकी शोकान्त कथा वर्णित है। राजनैतिक-पराधीनता और सांस्कृतिक-च्चुतिका, पतन अनेकानेक कृतियोंमें बीच-बीचमें उल्लेख पाया जाता है। आनन्द-वादी होनेके कारण इन दुरवस्थाओंके वर्णनमें कहीं भी निराशा देखनेमें नहीं आती।

वल्लतोळपर गाँधीजी और काँग्रेसके सिद्धान्तों और परिपाटियोंका भी प्रभाव पड़ा था। १९२८ के कलकत्ताके काँग्रेस अधिवेशनमें वे केरलके प्रतिनिधिके रूपमें सम्मिलित हुए थे। 'मातृवन्दन,' 'मातृभूमिसे', 'मेरे गुरु', 'बस नहीं—बस नहीं' 'चक्र गाथा' (चर्खा गीत) 'ऐक्य ही सेवा है', 'हमारा जवाब,' 'सब खद्दर पहन लें' आदि कविताओंमें भारतके स्वतन्त्रता आन्दोलनकी भिन्न-भिन्न आधार-शिलाओंका वर्णन मिलता है। 'आजके शब्दकोशमें' शीर्षक कवितामें वल्लतोळ भारतके छोटे-बड़े राजाओं, महाराजाओं एवं सामन्तोंको चेतावनी देते हैं कि वे आखिर है तो केवल भारतीय ही और उनका कोई विशेष अधिकार टिक नहीं सकता। प्राचीन कालमें राजा तो प्रत्यक्ष रूपसे ईश्वरका अवतार माना जाता था; आज तो साधारण नागरिक से अधिक उसका कोई अर्थ नहीं रह गया है।" जो देश-प्रेम देशके अतीतके इतिहास, सभ्यता तथा संस्कृतिमें जड़ नहीं पकड़ता और भविष्यके प्रति आशा, प्रतीक्षा एवं आत्मविश्वास नहीं बढ़ाता, वह खोखला है, प्रभात कालीन कुहरेकी तरह क्षणिक है। किसी भी भारतीयको अतीतके विचारसे लज्जित होने और सिर झुका लेनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारा प्राचीन इतिहास गर्वकी चीज है। वल्लतोळकी अनेकानेक रचनाएँ इस अभिमानसे ओतप्रोत हैं। 'कॉच्चुसीता' की चम्पकवल्लीके एक पत्रकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है :—

हा, विट नल्लुक, न्त्य नर्मस्सिता
देवि, भारत धात्रि, निन् तृक्काल्क्कल् ।
जन्ममुटिनि मेलिलु मॅकिल् ञाञान्
निन् मटियितिल् तन्ने पिर्क्काव्;
सूदित पारतंत्र्यमाराकिय
सोदरिमारॅ नीळे काणावू ।
मात, रार्षोक्तिमाधुरीतर्प्पण
प्रीतलोके, प्रशस्तविचेष्टिते,
शीतपर्वत सेतु मध्यस्थिते,
सीत तन् जन्म भूवे, जयिच्चालुम्

[देवि भारतभूमि, तेरे पदपर अन्तिम प्रणाम! मुझे बिदा दे। अगर मेरा और कोई जन्म हो, तो तेरी गोदमें ही पैदा होऊँ और तब मैं हर जगह उन बहनोंको ही देखूँ जिनकी परतन्त्रता दूर हो गई हो।

आर्ष उक्तिकी माधुरीके दानसे लोक को प्रसन्न करनेवाली, प्रशस्त चेष्टा वाली, हिमालय और सेतुके बीच अवस्थित और सीताकी जन्म भूमि माता तेरी जय हो।]

या 'शिष्य और पुत्र' की इन पंक्तियोंको सुन लीजिए:—

वल्लायम देवकळ् पॅट्टुतवतुं सहिप्पॉं
मल्लायिरुन्नु हह! भारतपूर्वरक्तम्

[देवोंद्वारा दिये जानेवाले कष्टोंको भी प्राचीन भारतीयका रक्त नहीं सह सकता था]

ऐसी कई अन्य पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं:—

स्वतंत्ररस्मत्कुल पूर्वरार्त्त
त्राणत्तिनाय् शस्त्र मॅट्टुत्तुकय्यिल् (नौका-यात्रा)

[हमारे स्वतन्त्र पूर्वजोंने आर्तजनोंकी रक्षाके लिए शस्त्र धारण किया। रघुवंशमें दिलीपकी सिंहके प्रति "क्षातात् किल त्रायत....." आदि उक्ति याद कीजिएगा।]

अर्थिक्काय् सहजमां मारचवट्ट यटर्त्तेकि
मृत्यु दंडिनु नेरे मारुकाट्टिय कर्णन
नम्मळ् तन् प्रपूर्विकनानॅकिल् ऍन्नॅकॉण्टॅन्
धर्ममे चॅय्यिप्पानङ्ङॅन्तिनु मटिक्कुन्नु
पन्नगङ्ङळिलॉन्निन् आयुस्सु नीट्टान वेंटि
तन्नुटॅ तारुण्यश्री पूण्ट सुन्दर गात्रम्
पै मूत्त गरुडन्टॅ कॉक्कत्तु कोक्कांनिट्ट
जीमूतवाहन साधो, नमुक्कु राजावल्लो?
दीननां पिराविन्नु पकरं परुत्तिन्टॅ
तीनिनाय् शिबि पंटु तन्नवयवमांसम्
कैवाळालरिञ्ञप्पोळ् तॅरुच्च चॅवोरयान्
काश्मीरक्कुरि मार्ञ्ञाट्टिल्लस्मत्क्षितिविकम्नुम्
लोकत्तिन् सुखत्तिनाय् दुःखङ्ङळॉक्कॅत्तंक
लाकुवानाशंसिच्च तॅतॉरु महात्मावो
अा रन्तिदेवनुटॅ देहजमस्माणुक्कळ्
पारिटुन्नुटॅङ्ङङ्ङी नां श्वसिच्चिटुं काट्टिल्

('मलयालत्तिन्टॅ तल' मलयालमका सिर)

[होमके लिए अपना सिर माँग जानेपर कापालिक भक्तसे आदि शंकराचार्यकी यह उक्ति है—'जिस कर्णने याचकके लिए अपना सहज कवच तोड़ देकर मृत्युदण्डके सामने अपनी छातीको बढ़ा दिया, अगर वह हमारा पूर्वज है तो मुझसे धर्म करानेमें आप क्यों हिचकते हैं?

साधो, एक साँपकी आयुको बढ़ानेके लिए अपने तारुण्य-श्रीयुत, सुन्दर शरीरको जिस जीमूतवाहनने भूखे गरुड़ की चोंचपर लटका दिया, वह हमारा राजा है न?

दीन कबूतर के बदले अपने अवयवका मांस गरुड़के खानेके रूपमे देनेके लिए जब शिविने तलवारसे काटा था, उस समय छिटके हुए रक्तका कुंकुम तिलक अब भी हमारी भूमि पर से लुप्त नहीं हुआ है।

जिस महात्माने लोकके सुखके लिए सभी दुःखोंको अपने ऊपर रखनेकी प्रार्थना की थी, उस रन्तिदेवके शरीर-भस्मके अणु, जिस हवामें हम श्वास लेते हैं. उसमें इधर-उधर बिखरे हुए हैं।]

चॉलक्कॉट रत्नङ्ङळेयुं कक्कक्कूट्टत्तेयु मॉप्पम्
उत्कॉट गंभीराब्धि तन्नोमन मकळ्,
भीमारिक्कै च्चमतकळामश्ुवाल् आॅप्पं वॅट्टुम्
जामदग्न्य महर्षितन् दत्तपुत्रियाळ्,
परयन्टॅ कुटिळिलुं मरप्पॉरुळ् कॉळुत्तिय
परमयां मनस्विनी नम्मुटॅ अम्मा;
अद्वैतं तानल्लो नमुक्कम्मिङ्ङाप्पाल् पिरवि तॉ–
ट्टद्वेषर नाम, अभेदर नाम, अनहंतर् नाम।
एकतयिलून्निनिन्नु कैकळॉन्नाय् चेर्त्तुपिटि––
च्चाकुलियिल् निन्नुयर्त्तु कस्मद् राज्यत्तॅ।

('आपसमें मदद करो')

[बहुमूल्य रत्नों और कक्का (एक समुद्री कीड़ेका छिलका जिससे चूना बनाया जाता है) को एक साथ अपनेमें रखनेवाले गम्भीर समुद्रकी प्यारी पुत्री है हमारी देशभूमि।

भयंकर शत्रुओंकी हाथ रूपी समिधाको कुठारसे काटनेवाले परशुरामकी दत्तकपुत्री है वह।

परय, (एक अछूत जाति) की झोपड़ीमें भी वेद के तत्वोंको जिसने प्रज्वलित किया था, ऐसी महामनस्वा है हमारी माँ। (पाक्कनार नामक एक परय बड़े ज्ञानी थे जो सबके आदरके पात्र बन चुके थे।)

अद्वैत सिद्धान्त ही हमारे लिए माँका दूध है। जन्मसे ही हम द्वेष, भेद-बुद्धि और अहंसे विहीन है।

एकताम स्थिर रहें और हाथमें हाथ मिलाकर इस दुःखसे अपने देशको ऊपर उठा लें।]

भारतवर्षत्तिलॅ प्पूर्वरामृषीन्द्रन्मार—
पारिनुळ्ळटिक्कल्लु पार्त्तुकंटरिञ्ञावर्—
योगैकनिरतन्मार, भोग निस्पृहर, परि—
त्यागैकद्रविणन्मार—अवर् तन् वासङ्ङळो
पॉट्टिप्पुल्लुकळ् कॉटुं शुष्कपत्रौघं कॉटुम्
कॅट्टि मेञ्ञवयाय पाषक्कुटिलुकळत्रे।

(पुराण)

[भारतमें पुराने समयमें जो ऋषि गण रहते थे, उन्होंने संसारकी आधार-शिलाका पता लगा लिया था। वे योगमें ही निरत रहते थे और त्याग ही उनका एक मात्र धन था और उनका निवास स्थान थीं घासों और सूखे पत्रोंसे ढँकी हुई झोंपडियाँ !]

प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक महापुरुषों तथा प्रभावकारी घटनाओंके वर्णनके साथ-साथ दादाभाओी नौरोजी, स्वामी विवेकानन्द, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी आदि वर्तमान कालीन भारतके भाग्य विधाताओंके पुण्य स्मरणके हेतु कविने भी अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। इस दिशामें 'हमारा जवाब' देशके भविष्यके सम्बन्धमें कविके अक्षत विश्वासकी ओर संकेत करता है।

इस प्रकार महाकवि वल्लतोळ साहित्यकी सेवाके साथ-साथ समाज और राष्ट्रकी सेवा भी करते रहे। स्वतन्त्रता आन्दोलनमें केरलीय भी बढ़ते रहें—-इसके लिए उन्होंने एक ठोस भूमि ही तैयार नहीं की, बल्कि 'बस नहीं, बस नहीं' आदि 'प्रयाण गीत' (Marching songs) की भी रचना की। नमक-सत्याग्रहके अवसरपर उनका यही झण्डा-गीत प्रत्येक स्वयंसेवक और देशप्रेमीके ओंठोंपर था। इसके अतिरिक्त कथकलि, मोहनियाट्टम जैसे मृतप्राय लेकिन उत्कृष्ट प्राचीन कलाओंमें उन्होंने प्राण फूँक दिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन सबके लिए केरलकी जनता, सदा-सर्वदा उनकी कृतज्ञ रहेगी।

• • •

वल्लतोळ नारायण मेनन

[काव्य-सञ्चय]

१. पुराणङ्ङळ्

भारतवर्षत्तिलॅप्पूर्वरामृषीन्द्रन्मार्
पारिनुळ्ळ टिक्कल्लु पार्त्तकंटरि ञ्ञावर्,
योगैकनिरतन्मार्, भोग निस्पृहर्, परि—
त्यागैकद्रविणन्मार, अवर् तन् वासङ्ङळो,
पॉट्टिप्पुल्लुकळ् कॉण्टुं, शुष्कपत्रौघं कॉण्टुं
कॅट्टि मेञ्ञवयाय पाष् कुटिलुकळत्रे ।
ऍन्किलुमवयिल् निन्नङ्ङु किट्टिय मणि-
त्तंकङ्ङळ् महार्घङ्ङळ्, मट्टङ्ङु मल भ्यङ्ङळ ॥१॥

पट्टु मॅत्तयॅ क्काळु मिष्टमाय् वाग्देविक्कु
शिष्टरामवरुटॅ दर्भप्पुल् विरिप्पुकळ्
तत्वचिन्तोद्रेकत्ताल् ऍङ्ङानु मद्धन्यक्कु
विस्तीर्णत्तिनुनॅट्टि. वियर्त्तालप्पोळॅल्लाम्
प्रेमविव्हलयाय् तन् पोर्मुलक्कच्चत्तुम्पाल्
कोमळं वीशिप्पोन्न वागधीश्वरि तन्टॅ
मंजुकैत्तण्टिल् चिन्नि मिन्निय वळकळ् तन्
शिंजितं पुरात्तिल् निन्नुनामिन्नुं केळ्प्पू ॥२॥

१. पुराण

भारत भूमिके पूर्वज वे श्रेष्ठ मुनिगण हैं, जिन्होंने धरतीकी आधार-शिलाको देखा-समझा था। वे हमेशा योगमें ही लगे रहते थे। और वे भोग-सुखोंमें स्पृहा बिलकुल नहीं रखते थे। उनका एकमेव धन त्याग था। घास और सूखे पत्तोंसे बनी हुई निकम्मी झोपड़ी ही उनकी आवास थी ; फिर भी उनमेंसे ऐसे रत्न मिले जो बहुमूल्य और दूसरे प्रदेशोंमें अलभ्य हैं। ॥ १ ॥

कुशोंका बना हुआ उनका बिछौना वाग्देवीको रेशमी बिछौनेसे भी अच्छा लगता था। तत्व चिन्तनके आधिक्यसे जब कभी उनका विस्तृत भाल स्वेद-युक्त हो उठता था, तब देवी सरस्वती अपने उत्तरीयके छोरसे उनपर पंखा झलती थीं। उस अवसरपर उनकी कलाईके चमकीले कङ्कन बज उठते थे। वही ध्वनि आज भी हम पुराणोंमें सुनते हैं।

अम्महाशयन्मारां मुनिमारनुवेलम्
ब्रह्मनिश्चल ध्यानं निर्त्ति विश्रमिक्कुम्पोळ्
नन्मयिल् कवितयाँ देवियु मायिच्चॅय्त
नर्म सल्लापङ्ङळे, निङ्ङळ्क्कु नमस्कारम् ।
भासकाळिदासाद्यन्मारॅयुं पुलर्त्तिय
भासुर सारस्वत भंडार प्पुर कळे,
दुर्ग्रहमाहात्म्यमां आम्नायाद्रियिल् निन्मु
निर्गमिच्चॉष्ु किय निर्मल नदिकळे,
उच्चकैरुपनिषद्देवता क्षेत्रङ्ङळे,
सच्चतुवर्गाभिख्य सस्यकक्षेत्रङ्ङळे,
पेर् पॅरु मार्यन्मार् तन् विजय स्तंभङ्ङळे,
श्रीपुराणाख्यङ्ङळे, निङ्ङळ्क्कु नमस्कारम् ।।३।।

तॅनॉलि प्पषङ्ङळुं, तुमणं तुळुम्पुन्न
सूनङ्ङळ् तोरॅं, तत्तिक्कळिक्कु कुळिर् काट्ट्ुम्,
मानसं तॅळिञ्ञ्ा ुळ्ळ पक्षिकळुटॅं कळ–
गानवुं चेरुं लीला रामङ्ङळ् चिल दिक्किल् ;
तामरयिलकळाल् पच्चविल्लीसु पुत--
च्चामट्टिल् विळङ्ङ ुन्न पॉय्ककळ् चिल दिक्किल्
नक्षत्रङ्ङळॅं च्चूडारत्न ङ्ङळावक्कुं नाना–
वृक्षङ्ङळ् तिङ्ङं ु शैलारण्यङ्ङळ् चिल दिक्किल्;
पारमेल तट्टि प्परं पन्ळुन्किन् मणिचिन्नि –
च्चारावमोटे पायुं, पुषकळ् चिल दिक्किल्––
प्रकृति रमणीयं, शान्त गंभीरं, हा ! हा ! !
सुकृति निषेव्यमे निङ्ङळ् तन् महाराज्यम् ।।४।।

वे मुनिगण ब्रह्मका निश्चल ध्यान समाप्त कर विश्राम करते समय कविता देवीके साथ नर्म संलाप किया करते थे। वे नर्म संलाप तुम्हीं हो। तुम्हें मेरा प्रणाम। भास, कालिदास आदिके पालन करनेवाले भास्वर कोश-गृहो, समझनेमें कठिन वेदरूपी पर्वतसे निकलकर बहनेवाली निर्मल नदियो, उन्नत उपनिषद देवताओंके मन्दिरो, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षवाले पौधोंके खेतो, यशस्वी आर्योंके जयस्तम्भ श्रेष्ठ पुराणो, तुम्हें मेरा प्रणाम ।।३।।

मधु टपकानेवाले फल, सुगन्ध भरे पुष्पोंमें लीलापूर्ण ढंगसे घूमने वाले शीत पवन और मनमें प्रसन्न पक्षियोंके कल गान जिनमें मिले हुए हों वे सुरम्य स्थलीके रूपमें कहीं दिखाई देती है और कहीं कमलके पत्तोंका रेशमी वस्त्र ओढ़कर सुशोभित होनेवाले सरोवर हैं। कहीं वे पर्वत और काननके रूपमें हैं जिनके तरह-तरहके पेड़ नक्षत्रोंको अपने सिरका भूषण बना लेते हैं। किसी-किसी जगह चट्टानोंसे टकराकर शीशेके कणोंको बिखेरते हुए, बढ़े शोरसे आगे बहने वाली नदियाँ हैं। तुम्हारा साम्राज्य प्रकृति सुन्दर, शान्त गम्भीर और सज्जनोंके सेवनके योग्य ही है ।।४।।

दंडनाधिकारत्ताल् कण्णुरुट्टियो, स्नेहा-
खंड शक्तियाल् कैक्कु पिटिच्चु निरुत्ति,
भंगियिलनु रागालणच्चु तष् ुकियो
निङःङळ् पिन् तिरिप्पिप्पू दुष्कृतत्तिल् निन्नॅन्ने ।
मण्णिनॅ प्पॉन्नाक्कुन्न मायतन् कळित्तरम्
कण्णमक्काते नोक्किक्कण्टेट्टं चिरिक्कुन्नु ।
मर्त्यजीवित पुष्पं चेट्टि.ल् वीषुंवतोर्त्ति-
ट्टत्तलाल् करयुन्नू तत्क्षणं तन्ने निङःङळ् ।
नीतियुमनीतियुं, धर्मवुमधर्मवुं
वेर्तिरिच्चिवह् निङःङळ् भरणं नटत्तुन्नु ;
पैतलाँ लोकत्तिन्नु विश्वमानंदं नल्कान्
प्रीतियिल् तालोलिच्चु ताराट्टं पाटीटुन्नु ।।५।।

चॅकोलु दूरत्तिट्टु योगदंडॅटुक्कुन्नु ;
पॉन्किरीटत्तॅ ज्जटा जूटमाय् माट्ट.ीटुन्नु
स्वर्गवुं तृणप्रायं निङःङळक्कु जगत्तिन्कल्
मृग्यमाचॉन्नेयुळ्ळु स्वातंत्र्यं—साक्षात् मोक्षम् ।
पूतमोंकारं पोलॅ त्र्यक्षरात्मकमामी-
स्वातंत्र्यम् लाभिप्पानाय् क्करण त्रितयत्ताल्
सादरं प्रयत्निप्पिन्, साफल्यप्पॅटुत्तुविन्
सोदरन्मारे, निङःङळ् सारमाँ नर जन्मम् ।।६।।

———

दण्ड देनेके अधिकारसे आँखें तरेरते हुए,तथा स्नेहकी अखण्ड शक्तिसे हाथ थामते हुए, अथवा प्रेमसे आलिंगन करते हुए, तुम मुझे दुष्कृतोंसे निवृत्त कर रहे हो। मिट्टीको सोना बनानेवाली मायाकी लीलाकी ओर टकटकी लगाए देखते हुए तुम हँस रहे हो। उसी समय मर्त्यलोकके जीवनके पुष्पको दलदलमें फँसे हुए देखकर तुम दुःखसे रो भी रहे हो। नीति-अनीति, धर्म-अधर्म इनकी विवेचना करते हुए तुम शासन कर रहे हो। लोक-शिशुको विश्राम जन्य आनन्द देनेके लिए तुम उसे दुलराते हो और लोरियाँ सुनाते हो ।।५।।

तुम शासनका दण्ड दूर फेंककर योगका दण्ड ग्रहण करते और स्वर्ण-मुकुटको जटा-जूटमें बदल देते हो। स्वर्ग भी तुम्हारे लिए तृणके समान है। तुम्हारी खोजके योग्य इस संसारमें एक ही वस्तु है और वह है स्वातन्त्र्य—अर्थात् सच्चा मोक्ष ! भाइयो, पवित्र 'ओंकार' के समान जिसमें तीन अक्षर मिले हुए हैं उस स्वातन्त्र्यकी प्राप्तिके लिए मन, वचन एवं कर्मसे प्रयत्न करो और अपने महान् नर जन्मको सफल बनाओ ।।६।।

———

२. प्रभात गीतम्

अल्लिन्ट्ॅ यन्तिम यामत्तॅ ग्घोषिच्चू
कल्लोलमालि तन् मन्द्रतूर्यम् ।
रात्रितन् पोक्कॅत्रत्तोळ मायॅन्नतु
पात्तरियुन्नतिनॅन्न पोले,
नल् च्चॅन्तल प्पावुळ्ळत्तल पाँक्किनि-
न्नुच्चत्तिल् कूकिनार् कुक्कुटङ्ङळ् ।।१।।

चिक्कॅन्नुणर् न्नॅष्ु न्नेट्टुषस्सॅन्नवळ्
शुक्रनां कैविळक्केन्तियॅत्ति,
नानाविहंगम नादमां कंकण
क्वाणमोटंबर शार्लियकल्
इन्नलॅ रावुपयोगिच्च पूक्कळा-
कुन्न तारङ्ङळ् अटिच्चु वारि,
तावत्कस्तूरिच्चाराक्किय वार्तिकळ्--
त्तूवॅळ्ळिक्किण्णवुं, दूरॅ माट्टि,
वॅण्कुळिर् नीराल् तळिच्चु पुरोभुवि
कुंकुम लेपवु माचरिच्चाळ् ।।२।।

आ वेलक्कारि तन् निश्वासं पोलवे
पूविन् मणवुमाय् वीशि त्तॅन्नल ।
ब्रह्मांड हर्म्यत्रिन् मेल्त्तट्टुं कीष्त्तट्टुम्
निर्मलमायि विळङ्ङी मेन्मेल् ।
इप्पटि नूरु नूरायिरं हर्म्यङ्ङळ्
ऍप्पाँषुं पुत्तनाय् वॅच्चु पोट्टी
ऑप्प मतुकळि लाँक्कॅ विळयाटु--
मप्परा शक्तियॅ क्कूप्पुक नाम् ।।३।।

२. प्रभात-गीत

समुद्रगर्जनकी मन्द भेरीने रातके अन्तिम पहरकी घोषणा की, कितनी रात बीत गई, यह बतानेके लिए लाल पगड़ीवाले मुर्गे सिर ऊपर उठा करके ऊँचे स्वरमें बोले ।।१।।

शीघ्र उषा रूपी युवती शुक्रका दीपक हाथमें लिए पहुँची और विविध पक्षियोंकी चहक रूपी कंगन-ध्वनि उठाती हुई उसने आकाश-शालामें गत रातमें प्रयुक्त नक्षत्र-पुष्पोंको झाड़कर साफ कर दिया। जिसमें कस्तूरी लेप रखा था उस चन्द्र रूपी भालको भी उसने दूर किया। फिर सामने स्वच्छ-शीतल जल छिड़क दिया और कुंकुम लेप लगाया ।।२।।

उसके (प्रभातके) निःश्वास स्वरूप मारुत, फूलोंकी सुगन्ध लिये आ पहुँचा। ब्रह्माण्ड-महल की छत और जमीन निर्मल होकर अधिकाधिक चमक उठी। इस प्रकारके सैकड़ों, हजारों प्रासादोंको नित्य नूतन रखनेवाली और प्रत्येकमें एक ही कालमें लीला करनेवाली उस परा शक्तिको हम नमस्कार करें ।।३।।

३. कर्म भूमियुटॆ पिंचुकाल

आट्टि.लेक्कच्युत, चाटॉल्ले, चाटॉल्ले,
काट्टिलॆ प्पॉय्कयिल् प्पोयि नींताम्
काळकूटोत्कट काकोळ माकिन
काळियन् पार्प्पुण्टिक्काळिन्दियिल् ।
आरितॆरिञ्ञु कॉट्टुत्तु यशोदतन्
मारिलॆ त्तूमणि माल्य मता,
काळिंदि तन्नुटे काळिमावेन्तिय
चेलयिल् च्चीळॆन्नु चॆन्नु वीणु ।।१।।

पल्लवं पोलुळ्ळ रण्टिळं कैकळ् व–
न्नुल्लस ल्लीलमाय् त्तल्लुकयाल्,
वॆण्णुरप्पाल् नुर चिन्निच्चितरि न–
ल्लम्मया मन्नदिक्कार्द्रं नॆंचिल् ।
कण्णन्ट् प्पॉन्नुटल् कानन-धूळिवि–
ट्टुण्णि क्कतिरोटॆ बिंबं पोले
पेर्त्तुं वॆळिवु पूण्टप्पुषतन्नल—
च्चार्तिलिळकि मरिञ्ञु मिन्नि ।
मुङ्ङु मॉरेटत्तु, मट्टॉरेत्तु पोय्–
प्पॉङ्ङु; मलकळ् मुरिच्चु नीन्तुम्–
इङ्ङने संसार नाटकमाटिना–
नङ्ङवन् वारुण रंगत्तिन्कल् ।।२।।

दूरत्तॉरेटत्तु शान्तमाय् मेविय
नीरिन्नक त्तॉरिळक्क मुण्टाय्;
स्फीतङ्ङळायङ्ङु पॉङ्ङी कुमिळक–
ळेतो विपत्तिन् मुळकळ् पोले ।
आट्टि.लॉलिच्चु वरुन्नतॆंन्तितॉ–
रायिरं कॉम्पुळ्ळ मामरमो? ।।३।।

३. कर्मभूमिका नन्हा पाद

अच्युत, पानीमें कूदो मत, कूदो मत। वन-सरोवर जाकर तैर लो। कालकूट-सा उग्र विषधर कालिय नाग कालिन्दीमें रहता है। किसने फेंक दिया? देखो, यशोदाकी छातीकी मणिमाला, कालिन्दीके कृष्णजलरूपी वस्त्राञ्चलमें अकस्मात् जा गिरी! ॥१॥

पल्लव सदृश दो नन्हें हाथोंसे वे उल्लास-भरी लीलामें आकर तैरते रहे। इसलिए उस नदीके, जो एक अच्छी माँ है, आर्द्र वक्षपर धवलफेन रूपी दूधके झाग छितरा गए। कृष्णका कान्तिमान शरीर धूल-मुक्त होकर, बाल-सूर्यके प्रतिबिम्ब की तरह दीप्त हो उठा और उस नदीकी उद्वेलित तरंगोंके साथ उलटते-पलटते सुशोभित हुआ। कहीं डूब कर और कहीं उतराकर, फिर लहरोंको काटकर तैरते हुए उन्होंने जल-रंगभूमि पर जीवन-नाटकका अभिनय किया ॥२॥

दूर एक जगह पानी अब तक शान्त था। लेकिन इस समय वहाँ एक हलचल हुई। विपत्तिके अंकुरकी तरह पानीके बड़े-बड़े बुलबुले ऊपर उठे—जैसे नदीमें बहते हुए क्या आ रहा है? क्या हजारों शाखाओं वाला कोई बड़ा पेड़ है? ॥३॥

अय्यो, सहस्त्रफणोग्र क्करिम्पापॅ–
ङिङ ;–य्योमल् क्कोमळ प्पैतलॅङङो ?
नॅञ्ञा ुत्तु कैवॅच्चु केणार्क्कु मम्पाटि—
क्कुञ्ञा ुङङळोटॉप्प माट्ट ु वक्किल्
मूक्कु विटन्नुयर्न्नुळ्ळ शिरस्सोट्टुं
नोक्कि निलपायि पकच्च कण्णाल्,
वृन्दावनत्तिलॅप्पट्टिळं पुल्लुकळ्
तिन्नु तटिच्चु कॉष् ुत्त पैक्कळ्।
आयवर्क्कुळ्ळेक प्राणमरुत्तल्लो।
पायुन्नु पाम्पिम्ट् वायिलेक्काय् ।।४।।

कुण्टाळु माट्टि ले वॅळ्ळमिटक्किटे
रण्टाय् प्पकुत्तु कॉण्टण्फणीन्द्रन्
चीट्टि मुन्नोट्ट ु विटुन्न विषक्कॉटु––
काट्टि क्किटाविनु पून्तॅन्नलो !
तुंग शरीरनस्सर्प्पत्तान् बालनु
पॉङङ ुतटियाय् नुरुङङ ु नेरम्।
कालपाशोपमं काळियन् तन्ट् वा––
लोलप्पाम्पिन्ट् वालैन्नपोले
चेलिल् प्पिटिच्चु वलिच्चान् कुरच्चिट
पेलवमाकिन कैमलराल।
दंष्ट्राकराळमाँ वक्त्रं पिळर्त्त, ति–
लिट्टान् करङङळिटच्चक्कुट्टन्।
वाल् कौष्टु तल्लियुं वट्टत्तिल् चुट्टि युम्
वाशियाल् कीष् ुमेलाय् मरिञ्ञा ुम्,
काळिन्दियिट्ट ु कुलुक्किनान् काळियन्,
काट्टान कॉच्चु कुळत्तैप्पोले ।।५।।

आह, सहस्त्र फनवाला यह काला साँप कहाँ ! और यह प्यारा कोमल बच्चा कहाँ ! छातीपर हाथ धरे रोने-कलपनेवाले व्रज-बालकोंके साथ-साथ नदीके तटपर फैले हुए नथुनों और ऊपर किए हुए सिरोंवाली ये गायें, जो वृन्दावनकी रेशम जैसी घास खानेसे मांसल हो गई थीं, घबराई आँखोंसे देखती खड़ी रहीं। लगता था जैसे उनका प्राण-समीर ही साँपके मुँहमें प्रविष्ट होता जा रहा हो ।।४।।

वह फणीन्द्र नदीके गहरे जलको बीचमेंसे बाँटते हुए और फूत्कार करके विषैली वायु फैला रहा था। क्या वह वायु इस बच्चेके लिये सुगन्धित समीर है ? वह बड़ा साँप थोड़े समयके लिए उस बालकको बेड़े-जैसा सिद्ध हुआ। काल-पाशकी समानता करने वाली कालियकी पूँछको वह शिशु नारियलके पत्तेसे बने साँपकी पूँछकी तरह, कुछ समय तक अपने कर-सुमनसे घसीटता रहा। फिर कराल-युक्त दंष्ट्र-मुखको खुलवाकर उस प्रिय ग्वाल बालकने अपना हाथ उसमें डाला। अपनी पूँछको मारते, मँडराते और बड़े जोशसे उलटते-पलटते, कालियने कालिन्दीको इस प्रकार कँपा दिया—जिस प्रकार वन-गज छोटे तालाबको कँपा देता है ।।५।।

पूम्पैतल् पिन्नैया प्पूरिताक्रोधनाम्,
पाम्पिन्ट् पौङिङय पत्ति तोरुम्,
चैंकषल् कॉण्डुटु चवुट्टित्तुटङिङ नान्
तंकच्चिलंक किलुङङ्ङ्ुवण्णम्।
पोलि प्पुरिकुषल् कैट्टषिञ्ञ्ुण्णि तन्
तोळिल् प्पतिञ्ञातिन् तुम्पुकळिल्
वॅळत्तिन् तुळ्ळिक ळौट्टौट्ुु निन्नाटी
वैळ्ळियलुवकुकळैन्न पोले ।।६।।

चिन्निप्परन्नितु हाहामहारवम्
मन्निलुं वानिलुं नालिट त्तुम्;
आवू, कुरुन्नुकालारोमल् कुञ्ञनु
नोवुकयिल्ले, मुरिपैट्टिल्लै।
पारिच्च पाम्पिन्ट् पत्तिप्परप्पितु
पारयॅक्काळु कठोरमेट्ट्ुम्।
चोर तैरिक्कुन्नुवल्लो; कुमरक,
पोरुमे, पोरुमे साहसङङ्ङळ् ।।७।।

कैक्कुञ्ञन् काल् च्चविट्टेट्ट्ुवशं कॅट्टु
मेलकुमेल् कक्किय शोणितत्ताल्,
चीर्त्त पटङङ्ङळ् कुनिच्चता, कुंकुमम्
चार्त्तिच्चु काळियन् काळिन्दिये।
आ विषं नीङिङय पुण्यसरित्तिने
द्योविल् निन्नीक्षिच्चु देर्वाषमार
शुभ्र मेघङङ्ङळिलूटॅ पॉषि्च्चारॉ-
रुळ् पौरुळंचिन पुंचिरियॅ-
"ध्वस्त भुवनमां दौष्टयमे, निन्तल-
यॅत्र परत्तियुयर्त्तियालुम्
इक्कर्म भूमितन् पिचुकाल् पोरुमे
चिक्कॅन्नतॉक्कॅ च्चवुट्टित्ताष्त्तान् ।।८।।"

फूल जैसा वह बच्चा फिर उस क्रोध-भरे साँपके ऊपर उठे प्रत्येक फनपर, अपने मनोहर चरणोंकी सोनेकी अपनी पैंजनीको झनझनाते हुए, लातें जमाने लगा। मोर-पंखसे सजे उसके घुँघराले केश खुलकर कन्धेपर आ गये और उसके छोरोंपर चाँदीके गोल कणोंकी तरह पानीकी बूँदें झलकती थीं ॥६॥

भूमि और आकाशमें--चारों दिशाओंमें हाहाकार छा गया। आह, उस प्यारे बच्चेके नन्हे-से पैर घायल हो जाएँगे न, फट जाएँगे न। उस बड़े साँपके विस्तृत फनोंका फैलाव चट्टान जैसा विस्तृत कड़ा है और तुम्हारे कुमारके, पदाघातसे उन फनोंमेंसे खून निकल रहा है। बस, तुम्हरा यह अविचारित कार्य बहुत हो चुका ! ॥७॥

कालियने अपने सूजे फनोंको नीचे किया, उस नन्हेसे शिशुके चरण प्रहारोंकी मारसे विवश होकर, अपने मुखसे उगलते हुए रक्तसे कालिन्दीको अलंकृत किया।

देवर्षियोंने उस विष-मुक्त नदीका आकाश से निरीक्षण करते हुए, शुभ्र मेघोंके बीचसे गूढ़ार्थ--युक्त स्मित बरसाया--' भूमिको ध्वंस करनेवाले दुष्टते, तू अपना सिर कितना भी उठाले, उसे पाद प्रहार कर नीचा करनेके लिए इस कर्म भूमिका छोटा-सा चरण ही पर्याप्त है ! ॥८॥

४, ऍन्टॅ गुरुनाथन्

लोकमे तऱवाटु तनिक्की, चॅट्टि कळुम्
पुल्कळुं पुष़ुक्कळुं कूटि त्तन् कुटुम्बक्कार;
त्यागमॅन्नते नेट्टं; ताष़्म तानभ्युन्नति
योगवित्तेवं जयिक्कुन्नितॅन् गुरुनाथन्।
तारकामणिमाल चार्त्तियालतुं कॉळ्ळाम्,
काऱणिच्चळि नीळॅ प्पुरण्टालतुं काळ्ळाम्;
इल्लिह संगं, लेप मॅठिन्नव—समस्वच्छ-
मल्लयो विहायस्स, व्वण्णमॅन् गुरुनाथन्॥१॥

दुर्ज्जन्तु विहीनमां दुर्लभ तीर्थ ह्रदम,
कज्जलोद्गम मिल्लात्तोरु मंगळ दीपम्,
पाम्पुकळ् तीण्टीटात्त माणिक्य महानिधि,
पाष़् निषलुण्टाक्कात्त पूनिलावॅन्ना चार्यन्।
शास्त्रेमॅन्निये धर्म संगर नटत्तुन्नोन्,
पुस्तक मॅन्ये पुण्याध्यापनं पुलर्त्तुन्नोन्,
औषध मॅन्ये रोगं नशिप्पिपवन हिंसा-
दोष मॅन्निये यज्ञं चॅयववनॅन्नाचार्यन्॥२॥

४. मेरे गुरु

लोक ही उनका परिवार है। पौधे, तृण, फूल और कीट तक उनके कुटुम्बके अंग हैं। त्याग ही उनकी सिद्धि है और नम्रता ही उन्नति। इस प्रकार मेरे योगके ज्ञानी गुरु विजयी हो रहे हैं।

चाहे तारोंकी माला पहन ले, चाहे काले मेघका कीचड़ लग जाय; आकाश दोनों दशाओंमें निस्संगी और निर्लिप्त रहता है। वह हमेशा समान रूपसे स्वच्छ है। मेरे गुरु भी वैसे ही हैं।।१।।

मेरे आचार्य वे दुर्लभ तीर्थ ह्रद हैं जिसमें हिंसक-प्राणी नहीं रहते। वे ऐसे मंगल दीपक हैं जिसकी वर्तिकासे काजल नहीं निकलता। वे ऐसी माणिक्य निधि हैं जिसे साँप छू नहीं सकते और वे सुम-सदृश ऐसी चाँदनी हैं जो छायाएँ नहीं गढ़ती। वे बिना शस्त्रोंके धर्मयुद्ध करते हैं; बिना पुस्तकके पुण्यका अध्यापन करते हैं। वे बिना औषधियोंके रोगोंकी चिकित्सा करते हैं और बिना हिंसाके दोषोंका नाश करते हैं।।२।।

शाश्वतमहिंसया णम्महात्माविन् व्रतम् ;
शान्तियाणविटुन्नु पूजिक्कुं परदैवम्,
ओतुमारुण्टद्देह, महिंसा मणिच्चट्ट--
येतुटवाळिन् काँटुवाय्त्तल मटक्कात्तू ?
भार्ययॅ क्कटॅत्तिय धर्मत्तिन् सल्लापङ्ङळ,-
आर्य सत्यत्तिन् सदस्सिकलॅ स्संगीतङ्ङळ्,
मुक्ति तन् मणिमय क्कालतळ क्किलुक्कङ्ङळ्,
मुट्टुमॅन् गुरुविन्टॅ शोभन वचनङ्ङळ् ।
प्रणयत्ताले लोकं वॅल्लुमी योद्धाविन्नो
प्रणवं धनुस्सात्मावाशुगं, ब्रह्मं लक्ष्यम् ।
ओंकारत्तेयुं क्रमाललियिच्चलियिच्चु
तान् कैक्कॉळ्ळुन्नू तुलों सूक्ष्मामंशं मात्रम् ।।३।।

कृस्तुदेवन्टॅ परित्याग शीलवुं, साक्षात्
कृष्णनाँ भगवान्टॅ धर्म रक्षोपायवुम्,
बुद्धन्टॅटॅ यहिंसयुं, शंकराचार्यरुटॅ
बुद्धि शक्तियुं, रन्ति देवन्टॅ दयावाय्पुम्,
श्रीहरिश्चन्द्रन्नुळ्ळ सत्यवुं, मुहम्मदिन्
स्थैर्यवु मॉराळिल् चेन्नॉत्तु काणणमॅकिल्
चॅल्लुविन् भवान्मारॅन् गुरुविन् निकटत्ति-
लल्लाय्किलविटुत्तॅ च्चरित्रं वायि क्कुविन् ।।४।।

हा ! तत्र भवत्पाद मॉरिक्कल् दर्शिच्चॅन्नाल्
कातरनतिधीरन् कर्क्कशन् कृपावशन्,
पिशुक्कन् प्रदानोत्कन्, पिशुनन् सुवचनन्,
अशुद्धन् परिशुद्ध, नलसन् सदायासन् !
आतत प्रशमना मत्तपस्वि तन् मुन्नि-
लाततायितन् कैवाळ् करिंकूवळ मालयम्,
कूर्त्त दंष्ट्रकळ् चेर्न्न केसरियॉरु मान्कु-
ञ्ञार्त्तन्ति त्तटं तल्लुं वन् कटल् कळिप्पॉय्का ।।५।।

चिर अहिंसा ही उनका व्रत है; और शान्ति ही उनका आराध्य कुल देवता है। वे कहा करते हैं—'ऐसी कौनसी तलवार है, जिसकी धारको अहिंसाका कवच मोड़ नहीं देता?" मेरे गुरुके शोभन वचन पत्नीके पुनर्मिलन पर धर्मका संलाप, श्रेष्ठ सत्य-सदसी का संगीत और मुक्तिके मणिमय नूपूरोंकी झनकार ही हैं। प्रेमसे ही संसारको जीतने वाले इस योद्धाका धनुष प्रणव, बाण आत्मा और लक्ष्य ब्रह्म है। 'ओंकार' को भी क्रमसे पिघलाते-पिघलाते वे उसके सूक्ष्म अंशको ही अपना लेते हैं।।३।।

अगर आप ईसा मसीहका त्यागी स्वभाव, साक्षात् भगवान कृष्णके धर्म-रक्षणके उपाय, बुद्धकी अहिंसा, शंकराचार्यका मेधा-बल, रन्तिदेवकी दया, हरिश्चन्द्रका सत्य एवं मुहम्मदका स्थैर्य—इन सबको यदि एकही व्यक्तिमें देखना चाहते हों, तो आप लोग मेरे गुरुके पास ही चले जाएँ या उनके चरित्रको पढ़ लें।।४।।

अहा! मेरे गुरुके चरणोंके एक बार दर्शन करनेपर भीरु धीर, कर्कश कृपालु, कंजूस दानी, पिशुन अपिशुन, अपवित्र पवित्र और आलसी प्रयत्नशील हो जाते हैं। जिसे सर्वव्यापिनी शान्ति मिली है उस तपस्वी के सामने आततायियों का खड्ग बेल-पत्तों की माला है, पैने दंष्ट्रवाला सिंह हिरणका बच्चा है और तटों पर (लहरोंसे) प्रहार करनेवाला गरजता हुआ समुद्र क्रीड़ा-सरोवर है।।५।।

कार्य चिंतन चॅय्युं नेरमन्नेताविन्नो
कानन प्रदेशवुं कांचन सभातलम्,
चट्टट्ट. समाधियिल् एप्पॅट्टुमायोगिक्कु
पट्टणं नटुत्तट्टुं पर्वत गुहान्तरम्।
शुद्धमां तंकत्तॅत्तानल्लयो विळयिप्प–
तद्धर्मकृषकन्ट्ॅ सत्कर्म वयल् तोरम्।
सिद्धनामविटुत्तॅ त्तृक्कणो कनकत्तॅ–
यिद्धरित्रि तन् वॅरुं मञ्ञा मण्णयि क्काण्मू!
चामर चलनत्तालिळिच्चु काट्टुं पिशा––
चामहा विरक्तनु पूज्य साम्राज्य श्रीयुम्!
एतु पूंकषलिन्नु मषल् तोन्नाय्वानारि-
स्वातंत्र्य दुर्गाध्वाविल् पट्टुकळ् विरिक्कुन्नु,
अत्तिरुवटि वल्ल वत्कत्तुण्टु मुटु–
त्तर्द्ध नग्ननायल्लो वाष्ुन्नु सदाकालम्।।६।।

गीतक्कु मातावाय भूमिये दृढमितु
मातिरि यॉरु कर्मयोगिथॅ प्रसविक्कू–
हिमवद्विंध्याचल सानु देशत्ते काणू
शममे शीलिच्चॅष्ु मित्तरं सिंहत्तिनॅ–
गॅगयारॉष्ुकुन्नु नाट्टिले शरिक्किक्त्र
मंगळं काय्क्कुं कल्पपादप मुण्टाय् वरू!
नमस्ते गततर्ष, नमस्ते दुराधर्ष!
नमस्ते सुमहात्मन्, नमस्ते जगत्गुरो।।७।।

कार्यके सम्बन्धमें विचार करते समय कानन-प्रदेश भी उस नेताके लिए काञ्चन-सभा-मण्डप है। जब उग्र समाधिमें लग जाते हैं तब उस योगीके लिए नगरका मण्डप भी पहाड़ी गुहाका अन्तर है। उस धर्म-कृषकके सत्कर्म खेत-खेतमें खरा सोना ही उगा देते हैं। लेकिन उस सन्त की आँखें स्वर्गको भी इस भूमिकी पीली धूलके समान ही देखती हैं। चामरोंके चलनों द्वारा अपने दाँतोंको दिखानेवाला पिशाच ही उनके लिए पूजनीय साम्राज्य-श्री है। जो स्वातन्त्र्य दुर्गके पथ पर कौशेयके पाँवड़े इसलिए बिछा देते हैं कि कोई भी फूल जैसा कोमल चरण भी पीड़ित न हो, लेकिन वे स्वयं वल्कलका टुकड़ा पहनकर अर्द्धनग्न बने रहते हैं ।।६।।

गीताकी जो मातृभूमि है वही इस प्रकारके एक कर्मयोगी को जन्म दे सकती है। शममें अभ्यस्त ऐसा सिंह हिमालय और विन्ध्यके देशमें ही दिखाई पड़ता है। जिस देशमें गंगा बहती है उसमें ही इतना मंगल-फलदायक कल्पवृक्ष बढ़ सकता है। हे तृष्णा-हीन, आपको प्रणाम, दुराधर्ष, आपको प्रणाम, महात्मन्, आपको प्रणाम, संसारके गुरु, आपको प्रणाम ।।७।।

———

५. माप्पु

तीवंटियाप्पोस्सिलनेकमट्टाय्
तिङङन्नु यात्रोद्यतरां जनङङळु,
ऑट्ट्क्कॉराळङङ ॉरष्ुक्कु मुक्किल्
मलर्न्नु मॅय् नीण्टु किटन्निरुन्नु ।।१।।

ञॅरम्पॅ, लिपॅन्निव चेर्त्तु वॅच्चु
चुळिञ्ञ तोल् कॉण्टथ मूटियिट्टाल्
आळॅन्न पेरायतिनॉक्कुमॅकिल्
ऑ 'राळु' तान, ग्गाळितांग चेष्टन् ।।२।।

कैच्चीट्टु वाङङानुषरात्तॅ नेरं
नोक्कातनङङातॅ किटन्नितायाळ्
तीवंटि चॅल्लात्तॉरिटत्तिलेक्का--
यिरुन्नु सायासमवन्टॅ यानम् ।।३।।

कण् कुंटिलायि, क्कविळॉट्टि, मूक्कु
वळञ्ञु, वैवर्ण्य मियन्न वक्त्रम्
आनिस्सहायन् परलोक पांथ-
नाणॅन्नपेताक्षर मुच्चरिच्चू ।।४।।

कुप्पायमिल्ला, कुटयिल्ल, मारा-
प्पिल्ला, विरिप्पिल्ल, चॅरिप्पुमिल्ल ;
इद्दीर्घयात्रोद्यतनुंटरक्कल्
इरुंट कीर तुणि यॉन्नु मात्रम् ।।५।।

पैशाचतृष्ण क्कटि पॅट्टॉ टुङङ
प्पणिक्कु निर्त्तु मुतलाळिवर्गम्
चॅचोर तीर्न्नप्पॉष्ुति ट्टॅरिञ्ञ
मनुष्य देहङङळिलान्नितत्रे ।।६।।

५. माफी

रेलवे स्टेशनपर यात्रियोंकी भीड़ लग गई। एक गन्दे कोनेमें कोई व्यक्ति पीठके बल अकेले लेटा था ॥१॥

नसों और हड्डियोंको मिलादें और उन्हें झुर्रियों-पड़े चमड़ेसे ढँक दें और उसका 'नर' नाम पड़ जाए, तो वह भी जिसकी अंग-चेष्टायें बंद हो गई थी सचमुच एक नर ही है ॥२॥

वह टिकट लेनेके लिये उतावला नहीं हुआ। उसने समय भी नहीं देखा। बिना हिले-डुले वहाँ पड़ा रहा। उसे कठिनाइयोंसे भरी ऐसी जगहकी यात्रा करनी थी जहाँ रेलगाड़ी जा नहीं सकती थी ॥३॥

उसकी आँखें धँस गई थीं और गाल पिचक गये थे। नाक टेढ़ी हो चुकी थी और मुख विवर्ण था। उसके इन अंगोंने बिना अक्षरोंके ही कहा कि वह बेचारा परलोकका पथिक है ॥४॥

वह कुर्ता नहीं पहने था। उसके पास छतरी नहीं थी, गठरी नहीं थी, बिछौना नहीं था, जूते नहीं थे। लम्बी यात्राके लिए निकले हुए इस व्यक्तिकी कमरमें एक काला चिथड़ा ही लिपटा हुआ था ॥५॥

पैशाचिक तृष्णाके आधीन हो कर पूँजीपति अनन्त कामोंमें लगाकर, खूनके खत्म होनेपर जिन मनुष्य-देहोंको फेंक देते हैं, उनमेंसे एक थी यह देह ! ॥६॥

सुखामृतं स्वैरमशिच्चु दिव्य-
सौधे रमिप्पू मुतलाळि वीरन्,
अयाळ्क्कु विण्तीर्त्तवरो, विशप्पाल्
वल्लेटवुं वीणु मरिच्चिटुन्नु ।।७।।

मेलाळ्क्कु पूम्पट्टु किटक्क तुन्नि–
क्कूट्टन्नतिन्नारुटॆ कै कषच्चू,
एतो मरत्तिन् पॉळियाणवन्नु
किटच्चताहन्त किटन्नुचाकान् ।।८।।

उण्टायिरिक्काँ, तनतच्छनम्म
कुञ्ञुङ्ङळ् चेरुं कुटिलॉन्निवन्नुम्;
अभाग्यवत्ताकु मतिन् नटुत्तूण्
तानाय् वरां वीणु किटक्कु मीयाळ् ।।९।।

ईविश्रमावस्थयिलुं वियर्त्ति–
ट्टुंटप्पणिक्कारनु फालदेशम्;
श्रमिच्चु कंठं कुरुकुं कफत्तिल्
प्राणप्रयाण व्यथ पूषत्ति वॅप्पान! ।।१०।।

अवन्टॆ यॅल्लुन्ति विळर्त्त मार्त्त–
ट्टनुक्षणं श्वास विजृंभितत्ताल्,
यमागमं नोक्किटुवानॅणीट्टुम्,
काणाञ्ञारुन्नुं विषमिच्चिरुन्नू ।।११।।

अशक्तमामत्तल ताङ्ङवानो
तणुत्त मॅय्यॉन्नु तलोटुवानो
अङ्ङारुटॆयुं कृप कय्ययच्चो–
लॅतिन्निवन् दीन दरिद्रनायि
ऍन्तिन्निवन् पेर् पुकषात्तॉराळाय्,
ऍन्तिन्निवन् हीन कुले जनिच्चु!
महन्मृतांगस्नपनोचितं निन्
वॅन्नीरवृथाविल् कळयाय्क कण्णे ।।१२।।

सुख रूपी अमृतका पान करते हुए पूँजीपति वीर सुन्दर महलोंमें रमते हैं। किन्तु उनके (पूँजीपति) लिये जो स्वर्ग रचते हैं वे कहीं गिरे-पड़े भूखों मरते हैं ।।७।।

मालिकके लिए कुसुम-कोमल-रेशमी शय्या सीते-सीते जिसके हाथ थक गए थे, उसके लिए लेटकर मरनेके लिए मिला काठका तख्ता! ।।८।।

इसकी भी कोई झोपड़ी होगी जिसमें इसके माता-पिता और बच्चे रहते होंगे, या हो सकता है कि गिरा-पड़ा यही व्यक्ति उस अभागी झोपड़ीका केन्द्र-स्तम्भ हो ।।९।।

विश्रामके इस अवसरपर भी उस मजदूरके भालपर पसीना निकल आया था। गाढ़े कफके कारण उसके प्राणोंको निकलनेमें बड़ी कठिनाई हो रही थी ।।१०।।

जिसका वक्ष पीला पड़ गया था और जिसकी हड्डियाँ निकली हुई थीं, ऐसा वह व्यक्ति श्वासके झोंकोसे यमके आगमनको देखनेके लिए उठता; किन्तु उसे न देखकर बैठता हुआ, इस प्रकार कष्ट सह रहा था ।।११।।

उसके दुर्बल सिरको सम्हालने या ठण्डे शरीरको सहलानेके लिए वहाँ उपस्थित किसी भी व्यक्तिने कृपाके हाथ नहीं बढ़ाए। यह क्यों दीन-दरिद्र हुआ? क्यों एक प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं हुआ? क्यों निम्न वर्गमें जन्म लिया? हे मेरे चक्षुओ! बड़ोंके मृत शरीरको नहलाने योग्य अपने आँसुओंको वृथा मत खोओ! ।।१२।।

अरप्पु मुलं चिलर् मारि निन्नार् ;
अवन्टॆ गात्रं मलिनं, विगन्धम् ;
चिलर्क्कु चित्तार्द्रत कष्टमॆन्नी
यॊरॊट्टॆ वाक्किल् च्चॊलवाय् कषिञ्ञु ।।१३।।

नोक्किच्चिरिच्चू चिल देवकल्पर्,
'चावान् तुटङ्ङुट्टुकयाणु पावम्,
चिलर्क्कु दिच्चील विकारमॊन्नुम् —
मरिक्क साधारण मल्लि मन्निल् ?' ।।१४।।

मरिक्क साधारण ; भीविशप्पिल्
दहिक्कलो नम्मुटॆ नाट्टिल् मात्रम् ;
ऐक्यक्षयत्ताल् अटिमश्शवङ्ङळ्
अटिञ्ञु कूटं चुटुकाट्टिल्मात्रम् ।।१५।।

इप्पारिटकष् च वॆरुत्ततिन म–
ट्टटञ्ञु तान् निन्नितु कण्णु रंटुम् ;
ऎन्नालवन्नन्तिम मायॊरिक्कल्–
क्कूटि त्तुरन्नू ननवट्ट वक्त्रम् ।।१६।।

वेदान्तमिल्लात्तॊरु साधुविन्नी–
दशान्तरत्तिल् करळ् चॆट्टलिञ्ञु ;
अतक्कृतान्तायतनाध्वगन्टॆ
वरंट चुंटॊन्नु ननक्कयुंटाय् ।।१७।।

किटाङ्ङळॆ क्किचन पुल्कुवानो,
पिताक्कळ् तन् तृक्कषल् कैतॊषानो,
नल् प्पाति मॆय्योटवसानयात्र
युत्बाष्पदृक्कालुर चॆय्युवानो––
तरप्पॆटातत्तरुणन् पॊरु प्प––
ट्ट––ता, मुषङ्ङी मणियॊच्च मेन्मेल,
अंवन्कलॆत्तुं शमनन्टॆ पोत्तिन्
कंठस्थ घंटारवमॆन्न पोले ।।१८।।

कोई तो घृणासे दूर हट गया, क्योंकि उसका शरीर मलिन और दुर्गन्धमय था। किसीके हृदयकी करुणा 'कष्ट' इस एक ही शब्दके उच्चारणमें खर्च हो गई ।।१३।।

देव-समान (जो अपने वस्त्राभूषणसे और अपनेको अमर्त्य समझकर स्वयंको देवोंके समान मानते थे) उसे देखकर हँस पड़े। बेचारा मर रहा है। किन्तु किसीमें कोई भाव न जगा ! 'संसारमें मरना साधारण है न !'।।१४।।

मरना साधारण ही है। लेकिन इस प्रकार भूखों कष्ट सहना हमारे देशमें ही देखा जाता है। अनैक्यके क्षय रोगसे पीड़ित गुलामोंकी लाशें श्मशानमें ही एकत्र होती है ।।१५।।

उसकी दोनों आँखें बन्द थीं——मानो उन्हें इस संसारके दृश्योंसे घृणा हो। लेकिन उसका सूखा मुँह एक बार अन्तिम रूपसे खुला ।।१६।।

वेदान्तसे अनभिज्ञ किसीका हृदय उस समय थोड़ा पिघल गया और उस कृपालुने कालके घरको जानेवाले उस व्यक्तिके सूखे अधरोंको एक बार सींच दिया ।।१७।।

अपने बच्चोंको बिना गले लगाये, पितरोंके चरणोंमें बिना बन्दना किए और अपनी पत्नीसे आँसू भरी आँखोंसे अन्तिम यात्राकी बिदाई लिए बिना ही वह तरुण चल बसा। स्टेशनपर घण्टी बज उठी ! मानो उसके पास पहुँचनेवाले यमके भैंसेके कण्ठमें लटके हुए घण्टेकी आवाज हो ।।१८।।

तीवंटि वन्नु, पुरुषारमतिल् क्करिरि ;
द्योविन्कल् वीण्टु मॉरुवार युयर्न्नु सूर्यन
पावङ्ङळ् चत्तिटुकिलॅन्तु, पिरक्किकलॅन्तॅन्
पाषवाक्कितिन्नरुळ्क माप्पु, मनीषिमारे ।।१९।।

गाड़ी आई, लोग उसमें जा बैठे। आकाशमें सूर्य एक गज और ऊपर उठा। असहाय मनुष्य मरे या जिये, उससे क्या? पण्डितो, मेरी इस व्यर्थ वाणीको क्षमा करना! ॥१९॥

---

६. कर्षक जीवितम्

साम्राज्यच्चॅम्मिन्नु चॅंकोलुयर्त्तानुम्,
सन्यास वाष्चक्कु दंडेन्तानुम्,
वाणिज्य लक्ष्मिक्कु वॅळ्ळियुं पॉन्नुमां
नाणयं वेर् तिरिच्चॅण्णुवानुम्,
कैकॅल्पु नल्कुन्नतार् तन् प्रसादमों ;
दीर्घ नमस्कार मा निनक्काय् ।
वेदङ्ङळ् पोलुं कृषीश्वरि, निन्नुटॅ
वेरुट्ट् माहात्म्यं वर्णिक्कुन्नु ।
अल्लँकिलङ्ङ्यॅ वषत्ति स्तुतिक्कुन्न
चॉल्लु यातॉन्न, ते वेदमाकू ।।१।।

देवि, निन् चैतन्यं बाहु सिरकळिल्
ज्जीवरक्तत्तॅ यॉ ट्टोटि क्काय् किल्,
तूवल् नटत्तुमो साहित्यकर्तावु ?
तूलिक नीट्टुमो चित्रकारन् ?
वीण तॉट्टीटुमो गायकन् ? मुद्रकळ्
काणिप्पान् नोक्कुमो वेषक्कारन् ?
कुंपिट्टु निन् काल्क्कल् अर्पिच्च पुल्कॉटि
चॅपॉन्निन् तंटाय् चमञ्ञाटुन्नु,
आसेवकर्क्केवं भूरिप्रदात्रियाय्,
नीसर्वोत्कषण वर्त्तिक्कवे,
वेरॅयोरोन्निल् मुतिर्न्नेषन्नु वृथा
दारिद्र्यं पेरुन्नु मूढर् ञाङ्ङळ् ।।२।।

६. कृषक जीवन

जिसका अनुग्रह साम्राज्य-श्रीको राजदण्ड ऊँचा करने और संन्यासी जीवनको योग दण्ड उठाने तथा वाणिज्य लक्ष्मीको चाँदी-सोनेकी मुद्राओंको अलग करके गिननेके लिए भुज–बल प्रदान करता है उसको मेरा प्रणाम। कृषीश्वरि! वेद भी तुम्हारी महिमा गाता है। नहीं, नहीं, जो वाक्य तुम्हारी प्रशंसा और पूजा करता है, वही 'वेद' हो सकता है।।१।।

देवि, तुम्हारी चेतना बाहोंकी स्नायुओंमें जीवन-रक्तको न दौड़ाये तो क्या साहित्यकार कलम चला सकेगा, चित्रकार तूलिका से चित्र बना सकेगा? गायक वीणा बजा सकेगा और नट हाथोंकी कलाबाजियाँ दिखा सकेगा? तुम्हारे चरणोंमे झुका हुआ घासका पौधा सोनेका डण्ठल हो जाता है। अपने सेवकोंको जब विपुल मात्रामें सोना प्रदान करनेवाले सर्वोत्कर्ष स्वरूप जब तुम्ही हो तब हम दूसरे किसी कामका व्यर्थ कष्ट उठाते हैं।।२।।

स्नेहित, कर्षक, मिथ्या परिष्कार–
मोहितर्क्कङ्ङ ारु मोशक्कारन् ;
ऍन्नाल् भवानुटॅ निश्शब्द यत्नत्तिल्
निन्नाणी यंत्रत्तिन् घोषमॅल्लाम् ।
धीर, निन् तूविर्यर्पिट्टि.ट्ट.. वीषाय्किल्
वैरक्कल्लुण्टो विळङ्ङुट्टुन्नु ?
पाटत्तु निन्नु भवान्टॅ गात्रङ्ङळिल्
प्पाटे पतियुन्न पाष्चेऱल्लो
मेटप्पुऱङ्ङळिल् मेवुन्न धन्यर् तन्
मेनिक्कु कस्तूरि च्चाराकुन्नु ।
निच्चलुं वेलकळ् चॅय्तु पुलरुं निन् –
कॉच्चु कुटिलिकल् निन्नाणल्लो
पॉन्ति वरुन्नतु निन्नोटु नर्मोक्ति
मंत्रियक्कुं पत्तन माळिककळ् ।।३।।

सद्व्यवसायङ्ङळ् क्कॉय्तॅटुक्कुन्न नाळ्
ऍत्र निर्भाग्यनुं मुट्टत्तता
नॅञ्ञु कुळिर्पिक्कुं पॉन्मल तन् चिल
कुञ्ञुङ्ङळ्, नॅल्कट्ट. क्कूम्पारङ्ङळ् ।
मिन्निन्त्तिळङ्ङ क्कॉळ्ळट्टॅ यतातिटम्,
मन्नवन्माऱुटॅ चॅकोलुकळ्;
मन्निन्नुरप्पुळ्ळॉरुन्नायि निल्पतो
निन्नुटॅ कय्यिलॅ क्कालिक्कोल् तान् ।।४।।

मित्र कृषक, झूठी सभ्यतासे मोहित लोगोंके लिए तुम गए-बीते हो। लेकिन तुम्हारे मूक प्रयत्नोंसे ही यन्त्रोंका यह सारा घोष निकलता है। धीर! तुम्हारा पसीना यदि बूँद-बूँद न गिरे तो यह हीरा चमकेगा? तुम्हारे शरीरपर लगनेवाले खेतके कीचड़से ही प्रासादोंमें रहनेवाले धनिकोंके शरीरके लिए कस्तूरि-लेप उपलब्ध होता है। मेहनत करके निर्वाह करनेवाले! तुम्हारी झोपड़ीसे ही आकाशसे नर्म्मालाप फुसफुसानेवाली शहरकी अट्टालिकाएँ उठी हैं।।३।।

चाहे कोई (कृषक) अभागा हो, फिर भी जिस दिन उसके सद्व्यवसायकी फसल काटी जाती है उस दिन उसके आँगनमें देखो, छातीको ठण्डा करनेवाले मेरुके कितने बच्चे––पके धान-पौधोंके अम्बार दिखाई देते हैं। चाहे अपनी-अपनी जगह राजाओंके राजदण्ड चमक उठें; फिर भी तुम्हारे हाथकी लकुटी ही (बैलोंको हाँकनेकी) धरतीको सम्हालनेवाला स्तम्भ है।।४।।

स्वस्ति, वृषङ्ङळे, विङ्ङळ् तन्नम्ममार्
स्वस्तन्यदात्रि मारी ञाङ्ङळ् क्कुम् ;
हृद्यराँभ्राताक्कळ् निङ्ङळिङ्ङँङ्ङळ्क्कु
वृत्तिसम्पादन मुन् तुण क्कार
निङ्ङळ् तन् वार् मॅय्यिलॅण्णयॉलिक्काव्,
ञाङ्ङळ् तन् सस्नेह शुश्रूषयाल् ।
मण्टिक्कळिक्कुन्न कालिक्किटाङ्ङळ् तन्
कंठत्तिल् ञान्न कुट मणिकळ्
पाङ्ङु 'घणाघण' नादत्ताल् ञाङ्ङळॅ
पॉङ्ङुं 'घणाघण' नादत्ताल् ञाङ्ङळॅ
स्संगीत निर्वृतराक्किटाब् ।।५।।

धर्म महिंसयॅन्नॉन्नामताय् कण्ट
कर्मभूवाकुमि ब्भारतत्तिल्
अम्माहिमावु मटङ्ङि वरेणमो,
नम्मळ्क्कु नट्टॅल्लुऱ् क्कणमो,
सौभाग्यं वेणमो, संतुष्टि वेणमो,
स्वातंत्र्यं वेणमो—वेणमँकिल्
कर्षकजीवितं प्रत्युद्धरिक्क नाम्
कालानुकूल संस्कारपूर्वम्
स्त्रष्टाविन् तृक्कळिक्कोप्पां जगत्तितिल्
नट्टु वळर्त्तुक नन्म नम्मळ् ।।६।।

वृषभो, तुम्हारा कुशल हो ! तुम्हारी माताएँ ही हमें अपना दूध पिलानेवाली हमारी भी माताएँ हैं। तुम हमारे प्रिय भाई हो। तुम्हीं हमारी आजीविकाके सम्पादनमें आगे-आगे चलनेवाले हमारे सहायक हो। हमारी स्नेहपूर्ण सुश्रूषासे तुम्हारे शरीरमेंसे तेल टपक पड़े। दौड़ते-खेलते रहनेवाले बछड़ोंके गलेमें लटकनेवाली घण्टियाँ अपनी 'टुन-टुन' नादसे हमें संगीतका आनन्द दें ।।५।।

यदि हम चाहते हैं कि 'अहिंसा ही धर्म है', इसे जिसने पहले-पहल देखा था, उस कर्म-भूमि भारतमें वह प्राचीन महिमा फिर लौट आए। हमारी रीढ़ मजबूत हो जाय, सौभाग्य खिले, संतुष्टि मिले, स्वातन्त्र्य प्राप्त हो, तो हम समयानुसार सुधार करते हुअे कृषक जीवनका उद्धार करें। हम जो स्रष्टाके खिलौने स्वरूप हैं--शुभ कर्मके द्वारा इस संसारको आगे बढ़ाएँ ।।६।।

---

७. ऎन्टॆ भाषा

सन्निकृष्णब्धितन् गंभीर शैलियुं,
सह्यगिरि तन्नटि युऱप्पुम्
गोकर्णक्षेत्रत्तिन्निर्वृतिकत्ववुम्,
श्री कन्यामातिन् प्रसन्नतयुम्,
गंग पोलुळ्ळ पेराट्टि.न् विशुद्धियुम्,
तॆङ्ङळं काय् नीरिन् माधुर्यवुम्,
चन्दनैलालवंगादि वस्तुक्कळ् तन्
नन्दित घ्राण मां तूमणवुं,
संस्कृत भाष तन् स्वाभाविकौजस्सुम्,
साक्षात् तमिषिन्टॆ सौन्दर्यवुम्,
ऒत्तु चेर्न्नुळ्ळॊरु भाषयाणॆन् भाष
मत्ताटिक्कॊळ्क भिमानमे, नी ।।१।।

मिण्टित्तुटङ्ङान् श्रमिक्कुन्नॊर्पिचिळं–
चुण्टिन्मेलम्मॆन्नाप्पालोटॊप्पम्,
अम्मयॆन्नुळ्ळ रंटक्षरमल्लयो
सम्मेळिच्चीटुन्न तॊन्नामताय् ?
मट्ट.ुळ्ळ भाषकळ् केवलं धात्रिमार्,
मर्त्यनु पॆट्ट.म् तन् भाषतान् ।
माताविन् वात्सल्य दुग्धं नुकर्न्नाले
पैतङ्ङळ् पूर्ण वळर्च्चनेटू ;
अम्म तान् ताने पकर्न्नु तरुम्पोषॆ
नम्मळ् वकमृतु ममृताय् तोन्नु ।।२।।

७. मेरी भाषा

निकटवर्ती समुद्रकी गम्भीरता, सह्य पर्वतकी आधार-दृढ़ता, गोकर्ण मन्दिरकी प्रफुल्लता, कन्याकुमारीकी प्रसन्नता, गंगोपम 'पेरार्' (एक नदी) की विशुद्धि, कच्चे नारियलके जलका माधुर्य, चन्दन, एला, लवंग आदि वस्तुओंकी आनन्दप्रद सुगन्ध, संस्कृत भाषाका ओज, और ठेठ द्राविड़का सौन्दर्य—ये सब मेरी भाषामें मिले हुए हैं। अभिमान, तू मदसे नाच उठ! ।।१।।

बोलनेका प्रयत्न करनेवाले सुकुमार अधरोंको माताके दूधके साथ ही साथ 'अम्मा' के दो अक्षर ही सबसे पहले मिल जाते हैं न? दूसरी भाषाएँ तो धाय ही हैं। मनुष्यकी जन्मदात्री माता अपनी भाषा ही है। माँका वात्सल्य-भरा दूध पीनेसे ही बच्चे पूर्ण विकासको प्राप्त कर सकते हैं। जब माता स्वयं देती है तभी हमें अमृत, अमृत-सा मालूम होता है ।।२।।

एतॉरु वेदवु मेतॉरु, शास्त्रवु,
मेतॉरु काव्यवु मेतॉराळ्क्कुं
हृत्तिल् पतियेणमॅकिल् स्वभाषतन्
ववत्रत्तिल् निन्नुतान् केळ्क्क वेणम् ।
हृद्यं स्वभाष तन् शीकरमोरोन्नुं
उळ् त्तेनाय् चेरुन्नु चित्ततारिल् ;
अन्य बिन्दुक्कळो, तत्बहिरभागमें
मिन्निच्चु निल्क्कुन्न तूमुत्तुकळ्
आदिम काव्यवुं पंचम वेदवुम्,
नीति प्पॉरुळु मुपनिषत्तुम् ,
पाटि स्वकीयरॅक्केळ् प्पिच्च कैरळि
पाटवहीनयॅन्नार् परयुम् ? ।।३।।

कॉण्टाटि नाना विचितन तंतुक्कळ्
कॉण्टात्मभाषयॅ वाय्पिक्काय्किल्
केरळत्तिन्नो यिरुळ् क्कुण्टिल् निन्नॉन्नु
केरान् पिटिक्कयरॅन्तु वेरे ?
ऍप्पोळ् वरेक्कुमिल्लेवर् तन् भाषक्कु
कॅलपुं, परप्पुं, नटप्पुमॉन्नुम्,
अप्पोळ् वरेक्कवरावति ल्लात्तवर् ;
अप्रफुल्लाशयर्, अप्रशस्तर ।।४।।

विण् मॉषियां महाराणि यॅन्भाषक्कु
नन्म पुलत्तन्न तोषि पण्टे ;
पोरॅकिल्, द्वीपांतरङङ्ळिल् निन्नुमॉ–
ट्टॅ विद्याधनं नेटियोराय्
ऍत्र पेरिल्लिन्नु नन्मक्कळॅन्निट्टुम्
अत्र भवति दरिद्रयॅन्नो ! ।।५।।

कोई भी वेद, शास्त्र और काव्य हृदयंगम हो जाय, इसके लिये आवश्यक है कि उसे अपनी ही भाषाके मुँहसे सुनें। अपनी भाषाकी प्रत्येक हृद्य बूँद मन-सुमनमें मधु होकर मिल जाती है। दूसरी बूँदें उसके बाहरी भागोंको चमका भर देनेवाले मोती हैं। जिस कैरलीने आदि काव्य (रामायण) पञ्चम वेद (महाभारत) नीतिका सार (चाणक्यका अर्थशास्त्र आदि) उपनिषद आदि ग्रन्थोंको स्वयं गाकर अपने लोगोंको सुनाया है वह अपटु है, ऐसा कौन कहेगा ?।।३।।

अपनी भाषाकी प्रशंसा करते हुए, नाना प्रकारके चिन्तन-रूपी धागोंसे भाषाको मोटा न कर दें, तो दूसरा कौनसा रस्सा है जिसके सहारे केरल इस अन्धकार–भरे गड्ढेसे ऊपर आवे। जब तक जिनकी भाषामें बल, विस्तार और गति नहीं आती तब तक वे अशक्त, अविकसित आशयवाले और अप्रसिद्ध रहते हैं।।४।।

प्राचीन कालसे ही स्वर्ग की भाषा संस्कृत महारानी मेरी भाषाकी भलाई करनेवाली सखी ही है। यह पर्याप्त न हो तो आपके ऐसे कितने ही पुत्र हैं जिन्होंने द्वीपान्तरोंमें भी जाकर बहुत-सा विद्या-धन प्राप्त किया है। क्या, फिर भी आप दरिद्र है ? ।।५।।

अन्य भाषाब्धियिलाण्टाण्टु मुङ्ङिय
धन्यरे, निङ्ङळ् तन् वेल पाषिल्,
माल् पॅट्टितिल् निन्नुपार्जिच्च रत्नङ्ङळ्
माताविन्नायि स्समर्प्पिक्कायि्किल् ।
त्तॅल्लक्किकटाङ्ङळ् तन् सत्ग्रंथ क्षुत्तिनॅ-
त्तँल्लु शमिप्पिप्पानाळ ल्लाते
अल्लल् पॅटुन्न कुचेल कुटुंबिनि
यल्लयोनस्मुटॅ भाषयिन्नुम् ।
ऍन्त्र लज्जाकर, मॅन्त्र दुःखप्रदम् ;
पुत्र धर्म्मङ्ङळ् मरन्निटाय् विन् ।
मातृभाषक्किक्कह् दास्यं नटत्तायि्किल्
आधिपत्यत्तिन्ननर्हर् निङ्ङळ्—
भक्त्या स्वभाषतन् काल्क्कल् कुनियायि्कि—
लत्तलयॅङ्ङनॅ पॉङ्ङि निल्क्कुम् ? ॥६॥

बुद्धिमान्मारे, स्वभाषत्तरवाट्टिल्
स्वत्तु वळर्त्तुवान् यत्नं चॅय्विन्—
आलस्यत्तिन्नु निवापांबु नल्कुविन्
फालत्तिलोलुं विर्याप्पिनालें !
ऍरॅ वाक्कॅतिनु नाळॅ मुतल्क्किनि—
क्कैरळि तन्टॅ गृहांकणत्तिल्
पांडित्यभिक्षक्काय् वन्नवर् वन्नवर्
भांडं निरच्चे तिरिच्चु कूटू ।
केटट्ट ऍरौदार्य शीलत्तिरॅन्नॅन्ने
केळि केट्टुळ्ळवर् केरळीयर् ॥७॥

———————

अन्य भाषाओंके समुद्रमें गहरे गोते मारते हुए यदि आप उससे प्राप्त रत्नोंको अपनी माताको अर्पित न करें तो आपका सारा प्रयत्न व्यर्थ हुआ। हमारी भाषा आज भी अपनी प्रिय सन्तानोंकी सद्ग्रन्थ-क्षुधाको थोड़ा भी दूर करनेमें असमर्थ सुदामाकी स्त्री ही है। यह कितना लज्जा-जनक है, कितना दुखदायक है! आप लोग पुत्र-धर्मको भूल न जाएँ। यदि आप मातृभाषाकी सेवा नहीं करते तो स्वतन्त्रताके लिये अयोग्य ही हैं। आपका मस्तक यदि अपनी भाषाके सामने भक्तिसे झुक न जाए, तो फिर वह कैसे उठ सकता है? ।।६।।

बुद्धिमानो, अपनी भाषाके कुटुम्बकी सम्पत्ति बढ़े, ऐसा यत्न करो। अपने भालपर लगे पसीनेसे आलस्यको निवाप जल (प्रेतोंको दिया जाने वाला जल) दे दो। अधिक क्या कहूँ? कलसे जो ज्ञानकी भीख माँगते हुए कैरलीके आँगनमें आ जाएँ वे निश्चय ही गठरी भरकर ही वापस जाएँ। केरलीय त्रुटि-हीन उदारताके लिए बहुत प्राचीन कालसे ही प्रसिद्ध हैं।।७।।

८. आनिरुद्धन्

उषा : " हा, जन्य सीम्नि पल योध गणत्तॅ यॉट्ट्.-
वक्कोजस्सु क्काण्टु विमथिच्च युवावुतन्नॅ
व्याजप्पयट्टि.ल् विजयिच्चरुळुन्न दैत्य-
राजन्नॅष्ुं सचिवपुंगव, मंगळं ते ।।१।।

तॅट्ट्.ाचरिच्चवरिलॅन्नियॅ वांछपोलॅ
भट्टारिलॅकिलुमणक्कुक दंडमॅन्नो,
उट्ट्.ाळुकळ्क्कितु वरेक्कु मकार्यं चर्यं
पट्ट्.ात्तॅ निर्त्तिय भवान्ट्ॅ नयं विधिप्पू ? ।।२।।

ञ्ञानाळयच्चिह् वरुत्तियताणु; कय्ये--
रानाय् स्वयं वरिकयल्ल ममार्यं पुत्रन् ;
नानातरत्तिलपराध मॉराळ्क्कु, बन्ध
स्थानाप्ति यव्यनुं, इतो बलिवंशधर्मम् ।।३।।

अच्चारुशीलनु मधान्वितनॅन्नु तन्नॅ
वॅच्चालु मॅन् पॅरिय तॅट्ट्.ाषियुन्नताणो ?
हृच्चापलालनयवर्त्मनि मुंपु कालु
वॅच्चाळॅ विट्ट्, नुगनॅङ्ङनॅ शिक्ष नल्काम् ? ।।४।।

काराधिवास मविटॅक्कु विधिच्चतोर्त्ताल्
घोरापराधमुटयोरिवळ् वध्यतन्ने ;
वीरावरोधपद संश्रय धन्ययां ञ्ञान्
तीराक्कृतार्थं तयॉटॉत्तु मरिच्चु कॉळ्ळाम् ।।५।।

अल्लाय्किलॅन्तिनिनियुं मम दंड ?-मॅन्नॅ
क्कॉल्लातॅ कॉन्निट्टुक चॅय्तु कषिञ्ञु वल्लो।"
वल्लात्त तॉण्ट विरयाल वरवणि शेषम्
चॉल्लान् कुषङ्ङि, ऑरु कुट्टि कणक्कु कॆणाळ् ।।६।।

८. अनिरुद्ध

[उषा अपने पिता (बाणासुर) के मन्त्री कुंभाडकसे कारागृहमें बन्दी प्रियतमसे मिलनेके लिए अनुमति लेती है, उसी प्रसंगका यहाँ वर्णन है]

"रणक्षेत्रमें जिसने अपने ओजसे अकेले ही अनेक योद्धाओंका मन्थन किया था, उस युवकको छल-भरे युद्धमें जीतकर सुशोभित होनेवाले असुर राजाके श्रेष्ठ मंत्री, आपका मंगल हो ।।१।।

अपराधीको छोड़कर मनमाने दूसरोंको दण्ड ही देना उचित है ? क्या यही आपकी नीतिका विधान है ? जिन्होंने अब तक अपने लोगोंको बुरे आचरणसे बचाकर रखा था.... ।।२।।

उनको मैंने ही आदमी भेजकर बुलाया है। मेरे आर्यपुत्र अतिक्रमण करने स्वयं नहीं आए। अनेक प्रकारके अपराध करे कोई और कारावासकी प्राप्ति हो किसी और को, बलि वंशका क्या यही धर्म है ? ।।३।।

यदि मान लें कि चारु स्वभाव वाले वे भी अपराधी हैं, तो भी मेरा बड़ा अपराध क्या मिट जाएगा ? जिसने हृदयके चापल्यसे निषिद्ध मार्गपर पहले-पहल कदम रखा उसे छोड़कर अनुयायीको कैसे दण्ड दे सकते हैं ? ।।४।।

यदि उनको कारावास देनेका निर्णय हुआ हो तो घोर अपराधिनी मैं ही वध-योग्य हूँ। वीर-पत्नीके पदकी प्राप्तिसे धन्य होकर मैं अक्षय कृतार्थतासे मर जाऊँगी ।।५।।

"नहीं नहीं, मुझे फिर क्यों दण्ड मिले ? आप लोगोंने मुझे बिना मारे ही मार डाला।" यह कहकर उसका गला अवरुद्ध हो गया। इसलिए और कुछ कहने में असमर्थ हो वह बच्चे की तरह रो उठी ।।६।।

"तातन्नु ञानिह वधूजनवर्ज्यमाकुम्
स्वातंत्र्यमान्नर्तिलु मॅन्तभिमान भंगम् ?
हा, तन्मकळ् वकनघवीर वधूपदाप्ति
एतच्छनॅकिलुम सम्मतमावतुंटो ? ।।७।।

वीराग्र्यनुं भुवि कुलीनॅनुमाणु तानॅ--
न्नाराजमान्य चरितन् वॅळिवाक्कि यल्लो।
नारायणात्मज सुतन्नॉरु दासिययि-
त्तीरानु मेतु नृपकन्य कॉतिक्कयिल्ला ?" ।।८।।

मन्त्री : चूटांट वीर्प्पिटु ममात्यनुरच्चु-"वत्से,
तेटाय्क मन्यु ; शुभमाय् वरु मॉक्कॅ मेलिल ;
ईटार्न्नु वाय्क्कु मनुराग नदिक्कु विघ्नं
कूटात्तॉष्ुक्कनुवदिक्कुकयिल्ल दैवम् ।।९।।

एकांत रूढ मिह निन्नधानुरागम्
स्वीकार्यकोटियिलिरिप्पतु तन्नॅ ; पक्षे,
हे कार्य वेदिनि, यशोधननां नृपन्नु
लोकापवाद मखिलोपरि गण्यमल्लो ।।१०।।

निल्लात्त कोपभर मॉन्नॉषियट्टॅ यच्छ-
न्नॅ ; ल्लां यथेष्टमरि यिच्चु शरिप्पॅटुत्ताम् ;
तैल्लाश्वसिक्क।" 'तव तत्सखि चित्रलेखे,
वल्लाय्म तेटिटरुतॅ", न्नॅष्ुनेट्ट्ु वृद्धन् ।।११।।

उषा : पेर्त्तु विटर्न्न पनिनीर् मलरिंकल् मञ्ञ्ु-
नीर्त्तुळिळ पो, लरुणमाय कविळ्त्तटत्तिल्
वीर्त्तळ्ळ दीर्घ नयलङ्ङळिल निन्नु बाष्पम्
वार्त्तु,त्पलाक्षि वरमंत्रियॉ टॉन्नु चॉन्नाळ् ।।१२।।

"शोकाब्धि यॉटॉरुष तन् हत जीवित त्तिल्
आकॉक्षयुंटु मम बन्धु जनत्तिनॅकिल्
एकाकियाय् प्रियनिरिक्कु मिटत्तिलॉन्नु
पोकान् भवाननुवदिक्कण मिप्पॉषॅन्नॅ" ।।१३।।

"मैंने वधुओंके लिए वर्जनीय स्वातन्त्र्य का आचरण किया, इससे पिताका अभिमान क्या भंग हो सकता है? क्या ऐसा कोई पिता है जो अपनी पुत्रीके सुचरित एवं वीर व्यक्तिकी पत्नी-पदकी प्राप्तिसे सहमत न हो? ।।७।।

"राजाओंसे भी सम्मान्य चरितवाले उन्होंने क्या प्रमाणित नहीं किया कि मैं वीराग्रणी और कुलीन हूँ। क्या ऐसी कोई नृप-पुत्री होगी जो नारायणके पौत्रकी दासी न होना चाहे?" ।।८।।

उष्ण उच्छ्वास लेते हुए अमात्यने कहा—"वत्से, दीन और क्रुद्ध न हो। आगे सब शुभ होगा। ईश्वर स्थिर और बढ़ती प्रेम नदीको अविघ्न नहीं बहने देता ।।९।।

तेरा पवित्र अनुराग जो गुप्त रूप से पैदा हुआ है, स्वीकार करने योग्य ही है। हे कार्यको जाननेवाली! लेकिन राजाके लिए तो यश ही धन है और लोकापवाद ही सर्वोपरि गणनीय है न? ।।१०।।

तेरे पिताका न रुकने वाला क्रोध जब थोड़ा थम जाय तो मैं उनसे सब कुछ बताकर ठीक कर लूँगा। थोड़ा आश्वस्त हो जा।" "सखि चित्रलेखे, उदास न हो" इस प्रकार कहकर बूढ़े मन्त्री उठ गए ।।११।।

गुलाबके खिले पुष्पपर हिम बिन्दुकी तरह अरुण कपोलोंपर, सूजे हुए दीर्घ नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई उस कमल नयनीने श्रेष्ठ मन्त्रीसे एक बात और कही.... ।।१२।।

मेरे बन्धु, यदि आप यह चाहते हों कि शोक-समुद्रमें डूबी उपाका हत जीवन बच जाए, तो मुझे अकेले प्रियके पास जानेकी आप अभी अनुमति दे दें।" ।।१३।।

ओरात्तपेक्षयितु केट्टूळ वुळ्त्तटत्तिल्
आ राजकीय पुरुषन्नॉरु मिन्नल् पाञ्ञू
चेरात्तॉषिल्क्कु नृपदंडितनां युवावाय्
चेरान् स्वयं विट्टुकयो नृप पुत्रियाळॅ ! ।।१४।।

आमंत्रितंकल् नृपभक्ति भरं, कुमारी-
प्रेमप्रकर्ष मिव तम्मिलॉरे तरत्तिल्
व्यामर्द्द मॉट्टिट नटन्नु ; दशा विशेषात्
सामर्थ्यमान्नॉ ट्टुविलत्ततु तान् जयिच्चु ।।१५।।

जिसका उन्होंने ख्याल तक नहीं किया था उस प्रार्थनाको सुनकर उस राजपुरुषके हृदयमें बिजली दौड़ गई। अयोग्य कर्मके लिए दण्डित युवकसे मिलनेके लिए राजपुत्रीको छोड़ दिया जाए ।।१५।।

राजभक्ति और राजपुत्रीके प्रति प्रेम इन दोनों प्रकरणोंको लेकर उस मन्त्रीके हृदयमें द्वन्द्व मच गया। अन्तमें दशा विशेष एवं प्रेमके अधिक चातुर्यके कारण प्रेमकी ही विजय हुई ।।१६।।

———————

९. अच्छनुं मकळुम्

मुषिञ्ञ वस्त्रङ्ङळुं मॅटञ्ञ वार कून्तलुम्
मॅलिञ्ञ ु लावण्यैक भूषमामुटलुमाय्,
अत्तलिन् स्वरूपं पोला वन्न युवतियॅ
स्निग्धमां नयनत्ताल् दर्शिच्च निमिषत्तिल्
मेनके, निनक्कॅन्ती माट्ट.मॅन्नेवं चोदि-
प्पानावां मुतिर्न्नतु मुनि तन् तिरुमुखम्।
पिन्नीटिङ्ङनयत्रे चोदिच्चू--"स्फुट सम्राट्--
चिन्हानामिक्कुञ्ञन्टॅ. यमक्यां नीयार् वत्से?"
"मुक्तात्मन्, पिरन्नने वनत्तिल् मातापितृ-
व्यक्त ञान् कण्वर्षियालॅटुत्तु पोट्ट.प्पॅट्टोळ्,
मन्नन्नां दुष्यंतनाल् गान्धर्व परिणीत;
यॅन्नुटॅ जनकनो, विश्रुतन् विश्वामित्रन्।" ॥१॥

९. पिता और पुत्री

[जब शकुन्तला परित्यक्त होकर महर्षि कश्यपके आश्रममें रहती थी, तब एक बार विश्वामित्र वहाँ आए। उन्होंने कश्यपकी वन्दना करना चाहा और अपने शिष्य शुनःशेपको मिलनेकी अनुमति ले आनेके लिए भेज दिया। शुनःशेप चला गया। ऋषि विश्वामित्र पासके एक अशोक वृक्षकी छायामें आराम करने लगे। इसी बीच पहले कुमार भरतसे और फिर शकुन्तलासे उनका मिलन हुआ। इस समय पिता और पुत्रीमें जो वार्तालाप हुआ, उसीका प्रस्तुत कवितामें चित्ताकर्षक वर्णन किया गया है।]

गन्दे कपड़े पहने, वेणी गूँथी हुई, कृशता, तथा लावण्यको भूषणके स्वरूपमें शरीरपर धारण किए, दुःखकी मूर्ति की ही तरह आई हुई उस युवतीको ज्यों ही अपने स्निग्ध नेत्रोंसे देखा त्यों ही 'मेनके, तेरा यह परिवर्तन क्यों'— इस प्रकार पूछनेके लिए मुनि सन्नद्ध हो गए, लेकिन उन्होंने इस प्रकार पूछा—"सम्राटके चिह्नोंको लक्षित करनेवाले इस कुमारकी माता तू कौन है?" "मुने! जन्मके दिन ही मैं अपने माता-पितासे वनमें परित्यक्त कर दी गई। कण्व द्वारा मैं पालित-पोषित हूँ। राजा दुष्यन्तसे मेरा गान्धर्व विवाह हुआ है। प्रसिद्ध विश्वामित्र ऋषि मेरे पिता हैं ॥१॥

"ञानो !" विस्मितनाय्पोय् तापसन्, तव तातन्
तानल्लो, मुनि सुते, बिन्नाटि स्संसारिप्पोन्
"हा, शरि, योम्मिच्चेन् निन्नम्म मेनक--" तीर्ण-
क्लेशना मविटेक्कुं नोरुरन्नितो कण्णिल् ।
"ञाननुगृहीतयाय् तातदर्शनत्ताल्-
न्नानंदाकुलं काल्क्कल् वीण नन्दिनियाळॆ
सत्वरं पिटिच्चॆष़ुन्नेल्पिच्चु निरुकयिल्
प्पत्तुनूरुरु गाढं मुकर्न्नान् मुनिवर्यन् ।
तुटच्चानवळुटॆ कण्णुनीर वलं कय्याल्;
तटविक्कॊण्टान् मंदं पुरत्तु मट्टक्कय्याल्;
नृपनां जामाताविन् क्षेमवु मन्वेषिच्चान्,
अपत्यवात्सल्यमे, वशियुं वशगन् ते !
"ओमने, तव पेरॆन्तुण्णि तन् पेरु चोल्लू,
भूमीशमहिषि नी वन्नतॆन्तिनिक्काट्टिल् ?" ।।२।।

उटनॆ वीण्टुं कंबुकंठि तन् कंठत्तिल् नि-
न्निटरिप्पुरप्पॆट्टि तङङरु वीणाक्वणम्
"पेरिट्टान् शकुंतळ यॆन्नॆनिक्कच्छन् कण्वन्;
धारित सर्वदमनाभिधन् दौहित्रन् ते ।
अन्मतन्ननुग्रहाल् इद्दिव्याश्रममल्लो
वन्मालिलाष़ुमॆनिक्कीट्टिल्लमायित्तीर्न्नु ।
आश्रमात् प्रीत्या तात् कण्वनालयक्कप्पॆ--
ट्टाशया कॊट्टारत्तिल् चॆन्न गर्भिणियां ञान्"
संकटं पॊराञ्ञवळ् तॆल्लिट तेङिङक्कॆणाळ्-
"संत्यक्तयायेनल्लो सौम्यनां कणवनाल् ।" ।।३।।

'मैं!' विश्वामित्र विस्मयमें पड़ गए। यही तेरा तपस्वी पिता ही तुमसे बातें कर रहा है। "ठीक है—मैं याद करता हूँ। तेरी माता मेनका ....." जो सारे क्लेशोंसे मुक्त हो गए हैं ऐसे विश्वामित्रकी आँखोंसे भी आँसू निकल ही पड़े। "तातके दर्शनसे मैं अनुगृहीत हुई" यह कहकर बड़े आनन्दसे पैरोंपर पड़ी हुई पुत्रीको मुनिवरने जल्दी उठा लिया और भालको बार-बार चूमा। फिर अपने दाहिने हाथसे उसके आँसू पोंछे और पीठको दूसरे हाथसे सहलाते रहे। बादको उन्होंने अपने जामाता राजाकी भी कुशल पूछी। अहो सन्तानवात्सल्य! अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले मुनि भी तेरे वशमें ही हैं। लाडली, तेरा क्या नाम है? कुमारका भी नाम बता? राजा-महिषी होकर भी तू क्यों इस वनमें आई?" ॥२॥

शीघ्र ही कम्बुक कण्ठीके कण्ठसे एक काँपती हुई वीणा-ध्वनि निकली—"तात्! कण्वने मुझे शकुन्तला नाम दिया। आपका दौहित्र 'सर्वदमन' नाम धारण करता है। माताके अनुग्रहसे यही दिव्याश्रम मुझ दुःखिताका प्रसव-गृह हुआ। तात! कण्वने जब बड़ी प्रीतिसे मुझे आश्रमसे विदा किया तब मैं गर्भिणी थी। बड़ी आशास राजधानीमें पहुँची।" दुःख सहनेमें असमर्थ होकर वह थोड़े समय फूट-फूटकर रोई। "अपने शान्त प्रियतमसे मैं त्याग दी गई" ॥३॥

पकर्न्नु भावं पॅट्टॅन्नक्काल रुद्राकार;–
न्नुतिर्न्नु मिषियिल् निन्नॅरि तीप्पॉरि मेन्मेल्;
वळञ्ञ् पुरिकङङळ्, चुळिञ्ञ्, वार् नॉट्टित्त,–
ट्टीळकीलिलयुम्, ङङटङङी काट्टॅम्पाटुम्।
"दुष्यंतनवनारॅन्नारोमल् वकुमारियॅ––
द्दुस्सहावमानत्तिल् तळ्ळियिट्टुयिर् क्कॉळ्वान्?
इक्करमॉन्ने पोरुं कालक्षणाल् मनुष्यरॅ
स्वर्गत्तिल् करेट्टानुं, नरके वीषिक्कानुंम्।
पौरवन् केट्टिट्टिल्ले त्रिशंकु हरिश्चन्द्र–
न्मारुटै अनुभवं कौशिक प्रभावजम्?
ऑरिक्कल् क्कूटियता कंटु कॉळ्ळट्टे लोकम्,
शरिक्किगाधेयन्टं वन् तपः प्रभावत्तॅ।
तनिये वेट्टिट्टन्तर् वलियॉ साधु स्त्रीयॅ––
क्कनिवट्टहेतुवाय् त्यजिच्च दुरात्मावे"–– ॥४॥

ब्रह्मावॅत्तपश्शक्त्या वरुत्तिच्चारे निर्त्ति
ब्रह्मर्षिपदं बलाल् वाङिङ्यते तॉन्नालो,
आ वलंकरं क्रोधाल् चुरुट्टिनॅचिल् चेर्त्ता–
णी वचस्सारंभिच्चतूर्ज्जस्वि विश्वामित्रन्,
आ मुष्टि मुन्नोट्टेक्कॉ न्नॅरिय प्पॅट्टाल् तीर्न्नु
स्वामि वंशत्तिन्नॉट्टुक्किटि वाळाय् प्पोमल्लो
ऍन्नालश्शापास्त्रत्तॅ रटुं कै कॉण्टु पिटि–
"च्चॅन्नॅयोर्त्तटङङेणमच्छनिङङ" न्नाळ् मकळ् ॥५॥

कालरुद्र-सी आकृति वाले उन मुनिका भाव एकाएक बदल गया। आँखोंसे ज्वलित स्फुलिंग लगातार झड़ते रहे। भौंहें वक्र हो गईं, भालपर रेखाएँ उभर उठीं। पत्ते भी नहीं हिलते थे। पवन तक निश्चल हो गया। कौन ! वह दुष्यंत है जो मेरी पुत्रीको इस प्रकार दुःस्सह अपमानमें ढकेल कर जीवित रहे। मनुष्यको क्षण मात्रमें स्वर्ग पहुँचाने और नरकमें गिरा देनेके लिये यही एक हाथ पर्याप्त है। त्रिशंकु और हरिश्चन्द्रके, कौशिकके प्रभावसे उत्पन्न अनुभव क्या पौरवने नहीं सुने हैं ? "

गाधेयके महान तपकी शक्तिको संसार फिर एक बार ठीक तरहसे देख ले। स्वयं वरण करनेके बाद पत्नीको गर्भकी अवस्थामें बिना कारणके बड़ी निर्दयतासे छोड़नेवाले दुरात्मन . . . . . " ।।४।।

जिसने ब्रह्माको अपनी तप-शक्तिसे बुलाकर पास खड़ा करके बलात् ब्रह्मर्षि पदवीको ले लिया—उस विश्वामित्रने दाहिने हाथकी बड़े क्रोधसे मुष्टि बाँधे अपने वक्षपर लगाये ही इस प्रकार कहना शुरू किया। यदि वह मुष्टि एक बार सामनेको पटक दी जाय तो सबकी इति हो जाएगी और स्वामीके वंशके लिए वह बिजली बन जाएगी। (यह जानकर) अपने दोनों हाथोंसे उस शापास्त्रको पकड़कर पुत्रीने कहा—" पिता, मेरे लिए जरा शान्त हो जाएँ " ।।५।।

"भर्तृनाशिनियायित्तीरॉल्ला भवत् पुत्रि,
निर्दग्धयायुं तीरॉल्लुग्र वैधन्यत्तिय्याल्;
अच्छनम्ममार् काले वॅटिञ्ञ निर्भाग्ययॅ
स्वच्छन्द मुपेक्षिच्चान् भर्त्तावु मॅन्ने वेण्टू।
सुबहिष्कृत मायि क्कॉळ्ळट्टॅ एॅन् जीवितम्;
सुतनुं पुरत्तायि प्पोकॉला मम दोषाल्।"
पुत्रि तन् कण्णीर् कॉण्टु कोपाग्नि शमिच्चति-
लॅत्रयुं प्रसन्ननायभिनंदिच्चल्यनच्छन्
"भद्रं ते; पिटिच्चॅन्नॅ क्करॅट्टि निन् सौशील्यम्;
भर्त्तावोटचिरेण चेन्नालुं सपुत्र नी।" ॥६॥

———————

"आपकी पुत्री पति-नाशिनी न हो जाए। वैधव्यकी उग्र अग्निमें वह जल न जाए। जिस अभागिनीको माता पिताने पहले ही छोड़ दिया था, उसे पतिने भी स्वच्छन्द छोड़ दिया--बस इतना ही! मैं बहिष्कृत हो जाऊँ परवाह नहीं! पर मेरा पुत्र मेरे दोषके कारण बहिष्कृत न हो।"

पुत्रीके आँसूसे कोपाग्नि बुझ गई और बहुत प्रसन्न होकर पिताने उसका अभिनन्दन करते हुए कहा--"तेरा शुभ हो! तेरी सुशीलताने मुझे ऊपर उठा दिया। तू अविलम्ब पुत्र सहित अपने पतिको प्राप्त कर!" ॥६॥

———————

१०. मारियात्तिन्टॆ प्रार्थना

कुब्जयां सैरंध्री राजांगरागत्ताल्
अब्जदळाक्षनॆ यॆन्न पोले,
अन्यादृशामोद तैलाभिषेकत्ताल्
कन्या 'तनूजनॆ प्रीतनाक्कि,
तन्नुयिर् नाथंकल् चेर्क्कुवानयिट्टो
तन्वियाळ् नीण्टॊरु वीर्प्पु विट्टु ।।१।।

तत्गळत्तिकल् निन्नुतगत मायपिन्नॆ
गद्गतं पूण्टॊरु वीणागानम्--
"नाथ, तवाज्ञकळ् केट्टु नटक्कातॆ
नानापराधङ्ङळ् चॆयतु पोय् ञान् ।
शासितावायोने, सर्वं क्षमिच्चु निन्
दासियॆ त्तृक्काल्क्कल् निर्त्तेण मे ।
'मुट्टुविन् वातिल् तुरक्कु--' मॆन्नङ्ङुन्नु
पट्टाङ्ङमाय् चॊन्नतोर्त्तुकॊण्टे,
तावकानुग्रह द्वारत्तिल् मुट्टुमि-
प्पावत्तिनेकु किङ्ङुळ् प्रवेशम् ।।२।।

अल्लल् पेरुंकटल् कल्लोल मालयिल्
तॆल्ललल्लञ्ञु कुषङ्ङुन्नु ञान् ;
एषयामॆन्नॆ क्करेट्टुवान् मट्टारु--
ण्टाषिक्कुमीतॆ नटन्नवने ?
लीलया कंटु चिरिप्पानाय् वंचकन्
मेले विरिच्चिट्ट पुल्परप्पिल्
मेयानाय् चॆन्नॊरु पॆण्मान् निरालंब-
यायिता वीणुपोय् मुळ्क्कुषियिल् ।।३।।

१०. मरियमका निवेदन

कुबड़ी सैरन्ध्रीने राजाके अंगरागसे जैसे कमल नयन कृष्णको प्रसन्न किया था वैसे ही उस युवतीने अत्यन्त सुगन्धित तेलके अभिषेकसे कन्या-पुत्रको प्रसन्न किया और एक ऐसी लम्बी साँस ली, मानो वह अपने प्राणको नाथमें मिलाना चाह रही हो ।।१।।

उसके गद्‌गद्-भरे कण्ठसे फिर एक वीणा-गान निकला— "नाथ आपकी आज्ञानुसार बिना आचरण किये मैं कई अपराध कर चुकी हूँ। हे शासनके अधिकारी, उन सबको क्षमा कर इस दासीको अपने चरणमें ही रख लीजिएगा। आपने कहा था "खटखटाओ तो खुलेगा।" इसे सत्य मानकर और इसीको याद कर मैं आपके अनुग्रह-द्वारको खटखटा रही हूँ। मुझे प्रवेश दे दीजिएगा ।।२।।

दुःख रूपी विशाल समुद्रकी कल्लोल मालामें बहती-भटकती मैं बहुत थक गई हूँ। हे समुद्र पर चलनेवाले*, आपको छोड़कर मुझे किनारे लगाने वाला और कौन है? धोखेबाजके द्वारा बिछाई हुई घासको चरनेके लिए जब हरिणी गई और वह निरवलम्ब होकर कण्टक-पूर्ण गड्ढेमें गिर गई तो इसको देखकर वह रहस्यपूर्ण ढंगसे हँसा ।।३।।

---

* किंवदन्ती है कि एक बार ईसामसीह 'गलेला' के समुद्रपर पैदल चले थे।

तेन्मॉषियाळितु चॉन्नतोटॉप्पमे
तेङिङक्करञ्ञु पोय् तॅल्लु नेरम्;
अब्बाष्पवर्षत्तिलीशन्टॆ हृत्सर-
स्सुत्पूर्णमायि कृपामृतत्ताल् ।
"चॅय्यरुतात्ततु चॅय्तवळँकिलुम्
इय्यन्नॆ त्तळ्ळॉल्ले, तम्पुराने ।
तिय्यिनॅप्पोलुं तणुप्पिक्कुं इप्पॉन् तृ--
क्कय्यिनाल् तीर्तवळल्लो ञानुम् ।
दुष्टप्परुन्तिन्टॆ वायिल् निन्नेग्गति-
कॅट्ट कपोतियॆ, द्दीन बन्धो,
अंजसा रक्षिच्चु निन् तिरुमेनि तन्
पंजरं तन्निलणक्केणमे" ।।४।।

सात्विक भक्तियां तेन् पॅरुमीवक
प्रार्थना बाक्कुकळाय पूक्कळ्
दंतकुन्दाभमां वॅण्पट्टु नूलिन्मेल्
चंतत्तिल् कोत्तॉरु मालयाक्कि,
विण्णिन् पॅरुमाळ् तन् मुन्निल् समर्प्पिच्चु
दंड नमस्कारं चॅय्तु वीण्टुम्,
आ मणित्तृक्कषल् चुंबिच्चितोमलाळ्,
तामरत्तारॉरु हंसि पोलॆ ।।५।।

मधु-वाणीसे इस प्रकार कहा और साथ ही थोड़े समय तक सिसकियाँ भरकर रोई। उस वाष्प-वर्षासे यीसु का हृदय-सरोवर कृपामृतसे भर गया।

"जो अकर्तव्य था उसे यद्यपि मैंने किया है, फिर भी स्वामी, मुझे त्याग न दीजिएगा। मैं भी आपके उन श्री-करोंसे सिरजी गई हूँ—जो आगको भी ठण्डा कर देते हैं।"

दीनबन्धो, दुष्ट बाज पक्षीके मुँहसे इस असहाय कपोतीको अभी छुड़ाकर अपने पिंजड़ेमें बन्द कर लीजिए" ॥४॥

उसने सात्विक भक्ति-युक्त मधुसे भरे इन प्रार्थना—वाणियोंके पुष्पोंको दन्त-कुन्दोंकी आभा वाले धवल कौशेय धागेमें सुन्दर ढंगसे पिरोकर एक माला बना ली और उसे स्वर्गके सम्राटके सामने अर्पण कर फिर दण्डवत् प्रणाम किया। तदनन्तर उन पद-रत्नोंको उस प्रकार चूम लिया जैसे कमल-पुष्पको हंसिनी चूमती है ॥५॥

चुट्ट.ुमॉरानंद शान्तत चेर्न्नितु;
मुट्ट.ुमनङ्ङाताय् दीपनाळम्
चन्द्रमस्सुन्निद्र नक्षत्र मध्यत्तिल्
निन्नु विळङ्ङिङ्ङनानॉन्नु कूटि;
घोरनरकत्तिल् निन्नाशु विण्णिले–
क्केरुन्न साध्वियॅ क्कॉण्टाटानो
शुभ्र मेघङ्ङळां वॅळ्ळिविमानङ्ङ–
ळभ्रस्थल त्तॅ ङ्ङु वन्नु निल्पाय् ।
एतिन् तटत्तिलॅ मुक्कुवर् येशुवां–
नेतावु नल्किय नेर् वलयाल्
आटल् पॅट्टुत्तातॅ पुण्य मत्स्यङ्ङळॅ–
त्तेटिप्पिटिप्पवराय चमञ्ञु,
अ 'ग्गलेल' क्ककटल् पापिनी मुक्तिक––
ण्टग्रचप्पॅरुंपर कॉट्टियार्त्तु ।।६।।

अत्तल् कॉण्टंधयां अम्महा भक्तयॅ
क्रिस्तु भगवान्टॅ तृक्कटाक्षम्
आस्थया स्पर्शिच्चु, सुप्रभातार्क्कन्टॅ
आद्यांशु कन्दळ मॅन्न पोले ।
प्रेमस्वरूपंकल् निन्नॉरि ट्ट.ुळ्ळ्कुप
तूमधुरोक्तियाय् निर्गळिच्चु,
अच्चातकिक्कतु, मेलिलॉरिक्कलुम्
उळ् चूटु चेराय् वान् तक्क वण्णम् :—
"पॉय् कॉळ्क, पॅण कुञ्ञे, दुःखं वॅटिञ्ञु नी,
उळ्क्कॉण्ट विश्वासं कात्तु निन्नॅ
अप्पप्पोळ् पातकं चॅयवति नॉक्कॅयुं,
इप्पश्चात्तापमे प्रायश्चित्तम् ।।७।।

['मग्दलन मरियम्' से]

———————

चारों ओर आनन्दपूर्ण शान्ति छा गई। दीपकी ज्वाला न हिली न डुली। उन्निद्र नक्षत्रोंके मध्यमें खड़ा होकर चन्द्र और झलक उठा। घोर नरक से उठकर स्वर्गको जानेवाली उस साध्वीकी प्रशंसा करनेके लिए ही मानो शुभ्र मेघोंके रजत-विमान आकाशमें हर जगह आ रुके हों।

जिसके किनारेके मछुए लोग नायक ईसा द्वारा दिए हुए सत्य रूपी जालसे, बिना दुखके, पुण्यकी मछलियोंको खोज-खोजकर पकड़नेवाले बने वह 'गलेला' समुद्र पापिनी की मुक्तिको देखकर श्रेष्ठ नगाड़ा मारते गरज उठा ॥६॥

दुःखकी अन्धी उस महा भक्तको भगवान ईसाके कृपा-कटाक्षने प्रेमसे इस प्रकार स्पर्श किया जैसे प्रभातको सूर्यकी आद्य किरण स्पर्श करती है। उन प्रेम-स्वरूप यीसुके हृदयसे कृपाकी बूँदके रूपमें एक मधुर उक्ति बाहर निकली ताकि उस पातकीको फिर कभी प्यास न लगे।

"लड़की, तू दुःखको छोड़कर जा। हृदयके विश्वासने तुझे बचा लिया। किए गये पापोंके लिए पश्चात्ताप करना ही उनका प्रायश्चित्त है ॥७॥

———

११. पार्वतियुटॆ क्रोधवुम् समाधानवुम्

उटन् महादेवि इटत्तु कय्याल्
अषिञ्ञा वार् पूंकुषलॊन्नॊतुक्कि,
ज्वलिच्च कण् कॊण्टॊरु नोक्कुनोक्कि,
पार्श्वस्थनाकुं पतियोटुरच्चु–– ।।१।।

" किट्टीलयो दक्षिण वेण्टु वोळम्
विशिष्टनां शिष्यनिल् निन्निदावीम्;
दिव्यायुधं वल्लतुमुंटु बाक्कि–
यॆन्नालतुं नल्कि अनुग्रहिक्काम् ।।२।।

मकन् परिक्केट्टु मरिक्किलॆन्तु,
महारथन् शिष्यनटुक्कलिल्ले !
' रामन् जगत्सत्तमनाणु पोलुम् !
विद्यार्पणं पात्र मरिञ्ञु वेणम् ।।३।।

' ताय् ' तीर्क्कुवान् तक्कॊरु नल्ल कॊम्पु
यातॊन्निल् निन्नो मषुविन्नु किट्टि,
अश्शाखियॆं तन्नॆ यताशु वॆट्टि
वीषुन्नु, कार्त्तज्ञविजृंभितत्ताल् " ।।४।।

ऎन्तॊक्कॆयो हन्त, कथिच्चु वीण्टुं
सुतांग भंगार्द्दितयाय देवि;
भर्त्तावितिन्नुत्तर मॊन्नु मोती––
लु; त्कंठ पार्श्वस्थितर् पार्षिलॆन्ति ।।५।।

शिष्यन् प्रवर्तिच्चतु वीरधर्मम्,
सुतांगवैकल्य मॊरुग्र शल्यम्–
सर्वज्ञन्नालु मितिकल् ञायं
तोन्नाञ्ञु चिंतावशनाय् महेशन् ।।६।।

११. पार्वतीका क्रोध और सान्त्वना

तुरन्त ही महादेवीने (पार्वती) बाएँ हाथसे खुले सुन्दर केशको सँवारकर और प्रज्वलित नेत्रोंसे एक बार देखकर पास खड़े हुए पतिसे कहा... ॥१॥

"अब तुम्हें इस विशिष्ट शिष्यसे गुरु दक्षिणा खूब मिली न? कोई और दिव्यास्त्र शेष रह गया हो तो उसे भी देकर अनुगृहीत करो ॥२॥

पुत्र घायल होकर मर जाए; तो क्या? महारथी शिष्य पास है न? दुनिया भरमें श्रेष्ठ राम! पात्र जानकर ही विद्यार्पण करना है ॥३॥

हत्थेके योग्य शाखा जिस वृक्षसे कुल्हाड़ेको मिला था, वही कुल्हाड़ा उसी वृक्षको काट गिराता है--कृतज्ञताके विस्तारसे!" ॥४॥

देवीने पुत्रके अंग-भंगसे दुखी होकर और भी कुछ कहा। किन्तु पतिने उसका जवाब कुछ भी नहीं दिया। पास खड़े हुए लोग उत्कण्ठित हो गए ॥५॥

शिष्यने जो कुछ किया वह वीरका धर्म है। सुतका अंग-वैकल्य उग्र पीड़ा दे रहा है। सर्वज्ञ होनेपर भी उनको कुछ न्याय नहीं सूझा और वे चिन्तामग्न हो गए ॥६॥

निमेषमंचारिनिटक्कमंगळ्—
प्रमेयमा रंगमता मरञ्ञा ु पोय् !
क्रमेण संगीत मरंद सान्द्रमाय्
उमेश शैलोपरि वायु मंडलम् ।।७।।

अयत्न सिद्धोत्तम माधुरित्तष्—
प्पियन्नॉरोमन्मुरळीरवामृतम्,
लयत्तिनाल् सर्वचराचरङ्ङळुम्
मयङ्ङ ु मारङ्ङ ुपॉषिञ्ञा ु मंगळम् ।।८।।

पुराणदिव्यर्षि निपेत शेषम्—
द्द ुरापनादामृत मास्वदिक्कयाल्
आॅराकुलावस्थयिल् नम्मळ् कंटताम्
हराद्रि हर्षैकविकार माय् क्षणात् ।।९।।

प्रमोदरोमांचितयाय्, सुतव्यथा
विमोहमट्टं बिक पोलु मंजसा ;
नमो, नमस्ते, श्रुति मात्र वेद्यमा—
ममोघ संगीत कलानुभाव मे ।।१०।।

उटन् चॅविक्कॅन्नतु पोलॅ कण्णिनुम्
किटच्चु कैलास चरर्क्कॉरुत्सवम्
इटं पॅट्टुं वानिलुदार मोहनम्
पटर्न्नुकाणायॉरु दीप्ति मंडलम् ।।११।।

मुरक्कु हर्षातिभुत संभ्रमङ्ङळाल्
निरञ्ञा भूतङ्ङळ् मिषिच्चु निल्कवे,
परन्नु वन्ना, प्परिदीप्तमां मह-
स्सिरङ्गिङ, गौरीहरर् तन् नटुक्कलाय् ।।१२।।

त्रिलोक भांडं निरयैत्तिळङ्ङ ुमा—
विलोचनासेचनक प्रदीप्तियिल्,
अलोलतेजोमय नष्टमूर्तियुम्
तुलोमणञ्ञ ू दिन दीप रीतियॅ ।।१३।।

कुछ ही क्षणोंमें वह अमंगल दृश्य गायब हो गया और धीरे-धीरे कैलास पर्वतका वायु-मण्डल संगीत-मरन्दसे भर गया ।।७।।

प्यारी मुरलीके रवका वह अमृत, जिसमें सहज माधुर्य भरा था, वहाँ इस प्रकार मञ्जुलतासे बरसा कि सभी चराचर उसके लय में मग्न हो गए ।।८।।

पुराण और दिव्य ऋषियोंके पानके बाद बचे हुए और दुर्लभ उस नाद-सुधाके आस्वादनसे शिवका वह पहाड़, जिसे हमने एक व्याकुल अवस्थामें देखा था, आनन्दकी एकमेव चित्त-वृत्ति धारण किए अवस्थित था ।।९।।

सुत-व्यथाका नाश होनेसे अम्बिका भी तुरन्त प्रमोदसे पुलकित हो गईं। सुनने मात्रसे ही ज्ञातव्य ओ अमोघ संगीत-कलाकी महानते, तुझे मेरा प्रणाम (यहाँ ध्यान देने योग्य है कि कवि बहुत कालसे बधिर थे) ।।१०।।

कैलास निवासियोंकी आँखोंको भी एक उत्सव मिला जैसे कानोंको मिला था। विस्तृत आकाशमें एक उत्कृष्ट मधुर दीप्ति-मण्डल फैला हुआ दीख पड़ा ।।११।।

हर्ष, विस्मय और घबराहटसे भरे हुए भूतों के देखते वह दीप्त शोभा उड़ती आई और शिव-पार्वतीके बीच उतर पड़ी ।।१२।।

सारे ब्रह्माण्डमें भरकर चमकने वाली उस दीप्तिमें, जिसे देखते कोई अघाता नहीं था, स्थिर तेजोमय अष्ट मूर्ति (पञ्चभूत, सूर्य, चन्द्र, यजमान—ये आठों शिवकी मूर्तिमें मिले हैं।) शिव भी दिनके दीपक हो गए ।।१३।।

हरन्टॅ चारत्तु विळङ्िङ, सौम्यराय्
निरर्घ सौभाग्य गुणाभि पूर्तियाल
परस्परच्चेर्च्च तषच्च रंटुपेर्
ऑरन्द्रु तात्माबु मॉरन्द्रु तांगियुम् ।।१४।।

वलाहकश्यामळ कोमळांगनी––
विलासि विद्युत्समडंबरांबरन्,
सुलाळ्चवेणूज्ज्वल पाणि पल्लवन्
कलापि बर्हांकित कम्र कुंतळन् ।।१५।।

युवाविवन् कैय्क्कु पिटिच्च तन्वियो,
सुवासिताशातट चंपकांगियाळ्
नवातपोद्यन्नळिनास्ययाळ्, नरुं–
प्रवाळ नेर् पट्टुटयाट पूंटवळ् ।।१६।।

करांचलं कूप्पि वणङिङ, वंद्यर––
प्पुराणजायावररी युवाक्कळै,
'मुरांतक, श्रीधर, देवि, राधिके,
वरां वरां, स्वागत' मॅन्नु सत्वरं––।।१७।।

पुरुप्रहर्षत्तॉटटुत्तु कॉण्टु पो––
न्निरुत्ति मानिच्चु महासनङ्ङळिल्
कुरुन्नु तृक्काल्लथ वीणु कूप्पिनार
करुत्तरीशात्मज जामदग्न्यरुम् ।।१८।।

गुरूत्तमांतःपुर शाप भीतियो,
प्ररुढ सौभ्रात्रविभंगखेदमो,
औरूर्जिता स्वस्थत चेर्त्तिरिक्कयाल्
स्वरूप वैवर्ण्य मियन्न रामनॅ––।।।१९।।

हह, प्रकामाद्रत पूण्टु नोक्किनार्
सहस्रपत्रायत लोचनङ्ङळाल्
महर्द्धि गोलोकनिकेतनत्तिलॅ
ग्गृहस्थर श्शाश्वत दंपतीश्वरर् ।।२०।।

दो सौम्य व्यक्ति, जो अपने अमूल्य सौभाग्य-गुणकी पूर्तिमें एक दूसरेके योग्य ही थे, शिवके पास सुशोभित हुए--एक अद्‌भुत स्वरूप वाला पुरुष और दूसरी अद्‌भुतांगवाली स्त्री ।।१४।।

पुरुष मेघ जैसा श्यामल और कोमल शरीर वाला, विलासी, बिजलीके समान सुन्दर वस्त्र पहने हुए, लाड़के योग्य वेणु से उज्ज्वल पाणि-पल्लव वाला और मोर-पंखसे अंकित मनोहर केश वाला युवक था। उन्होंने जिस युवतीका हाथ थामा था, वह दिशाओंमें सुगन्ध फैला देने वाले चम्पक पुष्प जैसे शरीरवाली, प्रातः की धूपमें खिले कमलके से मुखवाली, और पल्लव जैसा कोमल कौशेय वसन पहने हुए थी ।।१५-१६।।

शिव और पार्वतीने, जो स्वयं वंद्य थे, उन दोनोंको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और --"मुरान्तक, श्रीधर, देवि, राधिके, आइए, आइये; स्वागत" इस प्रकार कहकर, बड़े हर्षसे पास ले आए और बड़े आदरसे महासनपर बैठाया। शिवके बली पुत्रों और परशु-रामने भी उनकी, चरणपर प्रणत होकर, वन्दना की ।।१७-१८।।

या तो गुरुकी श्रेष्ठ पत्नीके शापके भयने या प्ररूढ़ सहोदराके प्रेम-भंगके दुःखने परशुराममें बलवती अशान्तिको पैदा किया था। इससे उसका रूप विवर्ण हो गया था। बड़ी ऋद्धिवाले 'गोलोक' घर के गृहस्थ और अक्षय दाम्पत्यवाले उन दोनोंने कमल जैसे आयत नेत्रोंसे उस रामको देखा ।।१९-२०।।

त्रिविक्रम प्रेयसि येकदंतनॅ—
स्सवित्रि पोलॅत्रयु मोमनिच्चुटन्
पवित्र पाणि त्रळिर् कॉण्टवण्ट्ॅय—
क्कविळ्त्तटं तॉट्टु तलोटि मॅल्लंवे ।।२१।।

उणङ्ङि गंडस्थल मायवन्नु तत्—
क्षणं , हृदंतक्षत मद्रि मातिनुम् ;
गुणं तिकञ्ञीटिन राध तन् करम्
प्रणम्रदेयामृत शीत मल्लवो ।।२२।।

"परस्परं कुट्टिकळ् 'काटु काट्टि' याल्
ऑरम्मयित्र क्करिश प्पॅटावतो ?
हरंकलार्ये, भृगुसूनु शिष्यना—
यॉरन्नु तॉट्टुण्णिकळ् मुव्वराय् तव ।।२३।।
निनक्कणं पुत्ररिल् भीतॅयायियुम्
कनत्त वात्सल्यमॉटिक्कुलीननॅ
निनक्कु गर्भ प्रसवादि पीडयाल्
मनं कलङ्ङातॅ लभिच्च कुञ्ञावन् ।" ।।२४।।

कांतन् साकूत मंदस्मितमॉटु मभिवीक्षिक्कॅ रुद्राणि लज्जा—
क्रांतं वक्त्रेन्दु ताषत्ति, च्चरण पतितनां रामनॅ प्रेम भारात्
तान् तन्ने हन्त, कैकॉण्टति भृशमुपलाळिच्चिता : स्वच्छ धीर-
स्वांतन् विश्वैकयोद्धावॉरु चॅरु शिशुपोल् अंबिकांके विळङ्ङि ।।२५।।

['शिष्यनुं मकनुम्' से]

———————

विष्णुकी प्रियतमाने एक दन्त वाले (दूसरा दाँत परशुरामके कुठारसे टूट गया था।) गणेशको माताकी तरह लाड़-प्यार किया और अपने पवित्र कर-पल्लवोंसे उसके कपोलको धीरे-धीरे सहलाया ।।२१।।

उसके गण्डस्थल पर पड़ा घाव तुरन्त भर गया और साथ-साथ पार्वती के हृदयका क्षत भी। गुण-भरे राधाके हाथ प्रणतको देय अमृतसे शीतल ही है। ।।२२।।

"बच्चे परस्पर शरारत करें तो क्या एक माता इतनी क्रुद्ध हो सकती है! आर्ये, जिस दिन भृगुपुत्र हरका शिष्य बना उस दिनसे तुम्हारे तीन पुत्र हुए।

तुम्हें अपने पुत्रोंसे भी बढ़कर इसे स्नेह करना चाहिए। यह वह सन्तान है जो तुम्हें गर्भ और प्रसवकी पीड़ाओंके बिना ही प्राप्त हुआ है।" ।।२३–२४।।

पति जब रहस्यपूर्ण मन्दहाससे देखते रह गए, तब पार्वतीने लज्जासे आक्रान्त मुखचन्द्रको नमित कर, चरणपर गिरे हुए रामको बड़े प्रेमसे अपने हाथोंसे स्वयं उठाकर बहुत प्यार किया। शुद्ध धैर्यसे पूरित हृदयवाला, विश्व भरका एकमेव योद्धा वह परशुराम एक छोटे-से बच्चेके समान अम्बिकाकी गोदमें था ।।२५।।

['शिष्यनुं मकनुम्' से]